पु०
५९१७

वर्ष ४५] * * * [अङ्क ७

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

संस्करण, १,६५,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, जुलाई १९७१

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य भारतमें १०.०० विदेशमें १६.००(१८ शिलिंग)

जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

साधारण प्रति भारतमें ६० पैसे विदेशमें रु० १.०० (१५ पेंस)

आदि सम्पादक—नित्यलीलालीन श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। सम्पादक—चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्यामसुन्दरकी वंशी बजाती हुई श्रीराधा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
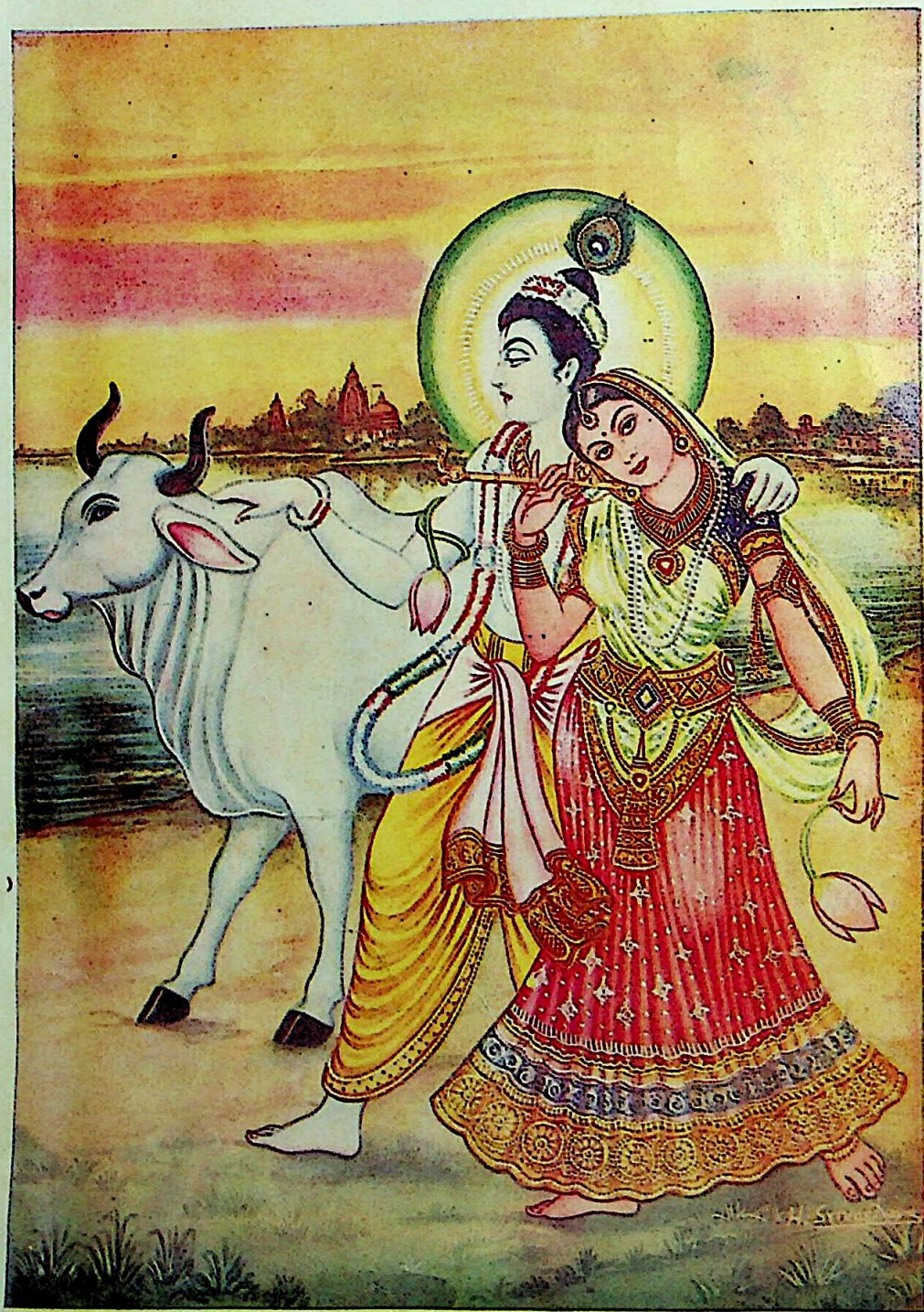
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे । इत्येवं संस्मरन् प्राणान् यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ॥

(अग्निपुराण)

वर्ष ४५ } गोरखपुर, सौर श्रावण, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, जुलाई १९७१ { संख्या ७ पूर्ण संख्या ५३६

श्रीराधाजीसे विनय

त्वां च बल्लवपुरंदरात्मज
त्वां च गोकुलवरेण्यनन्दिनि ।
एष मूर्ध्नि रचिताञ्जलिर्नमन्
भिक्षते किमपि दुर्भगो जनः ॥

(श्रीरूपगोस्वामी)

हे गोपेन्द्रकुमार और हे वृषभानुनन्दिनि ! मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर नमस्कार करता हुआ यह अभागा आप दोनोंसे कृपाकी याचना करता हूँ ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान्‌ने गीतामें अपने विषयमें कहा है—'सुहृदं सर्वभूतानाम्' अर्थात् मैं सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद्—अकारण हित करनेवाला हूँ। भगवान्‌की इस उक्तिके आधारपर एक नगण्य-से-नगण्य व्यक्ति भी भगवान्‌को 'अपना' कह सकता है और सचमुच भगवान् उसके 'अपने' हैं। जिससे हम बात नहीं करना चाहते, जिसे समाज तुच्छ मानता है, नगण्य मानता है—जिसकी संसारमें कोई गिनती नहीं, जिसपर संसारका कोई भी व्यक्ति दृष्टि नहीं डालना चाहता—ऐसा दीन-हीन-नगण्य व्यक्ति भी जब भगवान्‌की ओर देखता है, तब भगवान् उसकी ओर देखते हैं—यह भगवान्‌का सहज स्वभाव है। किसीसे उनको घृणा नहीं, किसीके प्रति उनके मनमें वैषम्य नहीं, किसीसे उनके मनमें द्वेष नहीं, वे सम हैं—

'समोऽहं सर्वभूतेषु' (गीता ९। २९)

'मेरा सर्व भूत-प्राणियोंमें सम भाव है।'

किंतु समस्त भूत-प्राणियोंमेंसे जो कोई भी उनसे कहेगा—'हम तुम्हारे', भगवान् उसके लिये कहेंगे—'हाँ! हाँ! तुम हमारे।' इतना ही नहीं, वे एक बात और साथमें कह देंगे—'तुम हमारे हो तो हम तुम्हारे हैं।'

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।

—ये भगवान् विष्णुके वचन हैं—'साधु (भक्त) मेरा हृदय है और मैं उनका हृदय हूँ।' भगवान् इतना कहकर ही विराम नहीं ले लेते, वे अपनेको कितने छोटे दायरेमें ले आते हैं—

'मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।

(श्रीमद्भागवत ९। ४। ६८)

'मेरे सिवा किसी दूसरेको वे नहीं जानते और उनके सिवा किसी दूसरेको रंचकमात्र भी मैं नहीं जानता।'

कितना अपनत्व है, कितनी आत्मीयता है! सचमुच भगवान्‌का ऐसा ही उदार स्वभाव है। उन्हें जो चाहो सो बना सकते हो—बाप बना लो, माँ बना लो, भाई बना लो, बेटा बना लो, पति बना लो, मालिक बना लो—यहाँतक कि 'चाकर' बना लो; वे सब कुछ बननेको प्रस्तुत हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीनपर राम सरिस कोउ नाहीं॥

सचमुच ऐसा उदार कौन है, ऐसा दयालु दूसरा कौन है, जो बिना सेवाके केवल 'हम तुम्हारे हैं'—कहनेमात्रसे घोषणा कर डाले, 'हाँ, हाँ, तुम हमारे हो और हम तुम्हारे हैं।'

जो भगवान्‌का हो जाता है, भगवान् जिसके हो जाते हैं, सारे सद्गुण अपने-आप उसमें आने लगते हैं—सद्गुण उसकी सेवा करनेमें अपना सौभाग्य मानते हैं। सचमुच ऐसा भक्त सद्गुणोंकी अपेक्षा नहीं करता, सद्गुण स्वयं अपने-आपको धन्य बनानेके लिये उसकी सेवा करनेमें नियुक्त होते हैं। सद्गुणोंका सौभाग्य इसीमें है कि वे ऐसे भक्तकी सेवामें रहते हैं। इस प्रकार भगवान्‌का हो जानेपर सद्गुणोंको लानेका प्रयत्न नहीं करना पड़ता, सद्गुण उसमें अपने-आप आ जाते हैं और फिर भगवान् कह देते हैं—'हम तुम्हारे हैं।' अतएव बस, यही करना है कि अपनी सारी ममता-आसक्तिको भगवान्‌में लगा दें और कह उठें—'भगवान् मेरे, और कुछ मेरा नहीं; मैं केवल भगवान्‌का, और किसीका नहीं।' अर्थात् अपनी सारी ममता भगवान्‌पर और भगवान्‌की सारी ममता अपनेपर अनुभव करें।

भगवान्‌ने भी अपने भजनका यही तरीका बताया है—

सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

'संसारके प्रति अपने ममत्वरूपी धागोंको बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मनको मेरे चरणोंमें बाँध देता है—सारे सांसारिक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्धोंका केन्द्र मुझे बना लेता है, वह मेरे हृदयमें बस जाता है।' हम भगवान्‌की इस वाणीपर विश्वास करें और भगवान्‌को अपना बना लें। जीवन जा रहा है; कब मृत्यु हो जाय---कुछ पता नहीं। अतएव निरन्तर तैयार रहना चाहिये और तैयारी यही है कि 'हम भगवान्‌के हो जायँ—होहि राम को।' इतना हुआ कि भगवान् तो अपनानेको तैयार हैं। भगवान्‌के साथ यह सम्बन्ध नया नहीं जोड़ना है; हमारा और उनका यह सम्बन्ध नित्य है, सनातन है। सचमुच भगवान् ही हमारे हैं और हम भगवान्‌के ही हैं; पर इस सम्बन्धको हमने भुला रखा है। पुरुष जो 'स्वस्थ' था, वह 'प्रकृतिस्थ' हो गया—अर्थात् मायामें स्थित होकर उसने अपने नित्य सम्बन्धको भुला दिया है। बस, हम अपने उस नित्य सम्बन्धको याद कर लें और पुकार उठें—'नाथ! हम तो भूल ही गये थे—तुम तो हमारे थे ही और हमारे ही रहोगे। अब हम इस सम्बन्धको नहीं भूलेंगे। अब तुम हमें मत भूलो और हम तुम्हें नहीं भूलें।' हम रात-दिन भगवान्‌को यही कहें और बार-बार मन-ही-मन इसकी ही आवृत्ति करें—'हम भगवान्‌के! हम भगवान्‌के! हम भगवान्‌के! भगवान् हमारे! भगवान् हमारे! भगवान् हमारे!!!' जगत्‌का 'हमारा-हमारा' सब झूठा है। 'यह घर हमारा, यह मकान हमारा, यह शरीर हमारा'—यह सब झूठा है। वास्तवमें कोई भी हमारा नहीं है, केवल भगवान् हमारे हैं। हम इसीकी रात-दिन आवृत्ति करें---'भगवान् हमारे हैं।' यही परम साधन है।

राम-विरहीकी स्थिति एवं परिणाम

विरहिणि रोवै रात दिन, झूरै मनही माहिं।
'दादू' औसर चलि गया, प्रीतम पाये नाहिं॥
पिव बिन पल-पल जुग भया, कठिन दिवस क्यूँ जाइ।
'दादू' दुखिया राम बिन, काल रूप सब खाइ॥
सहजैं मनसा मन सधै, सहजैं पवना सोइ।
सहजैं पाँचौं थिर भये, जे चोट बिरह की होइ॥
'दादू' पड़दा पलक का, एता अंतर होइ।
'दादू' बिरही राम बिन, क्यूँ करि जीवै सोइ॥
रोम-रोम रस-प्यास है, 'दादू' करहिं पुकार।
राम घटा दल उमँगि करि, बरसहु सिरजनहार॥
तलफि-तलफि बिरहिणि मरै, करि-करि बहुत बिलाप।
बिरह-अगिनि में जल गई, पीव न पूछै बात॥
राम बिरहिणी ह्वै गया, बिरहिणि ह्वै गइ राम।
'दादू' बिरहा बापुरा, ऐसे करि गया काम॥

—संत दादूदयालजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतोपदेश

(पुराने सत्सङ्गसे)

परमात्मा सर्वत्र चर-अचर सब भूतोंमें समानरूपसे व्याप्त है।

भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्॥
(१३। १५)

'पूर्णब्रह्म परमात्मा सम्पूर्ण चराचर भूतोंके बाहर-भीतर परिपूर्ण हैं; पर भगवान्‌का वह स्वरूप सूक्ष्म होनेके कारण अविज्ञेय अर्थात् जाननेमें नहीं आता, वह दूर-से-दूर और पास-से-पास भी है।' इसपर शङ्का होती है कि 'जब भगवान्‌का स्वरूप इतना सूक्ष्म है कि वह जाननेमें नहीं आता, तब वह सर्वत्र किस प्रकारसे व्याप्त है?' इस बातको एक दृष्टान्तसे समझना चाहिये—

आपके हाथमें एक तौलिया है। आपसे कोई पूछता है—'आपके हाथमें क्या है?' तो आप कहते हैं कि 'तौलियेके अतिरिक्त मेरे हाथमें कुछ भी नहीं है।' पर गहराईसे विचार करनेपर तौलियेके अतिरिक्त पहली चीज यहाँपर प्रकाश है। यदि यहाँपर अँधेरा हो, प्रकाश न हो तो आपको यह तौलिया दिखलायी ही नहीं पड़ सकती। दूसरी चीज यहाँपर आपके नेत्रोंकी वृत्ति है। यदि आपके नेत्रोंकी वृत्ति यहाँपर मौजूद न हो तो आपको यह तौलिया नहीं दिखायी पड़ सकती थी। आप नेत्रोंकी वृत्तिको तौलियेकी ओरसे हटा लें तो आपको तौलियेका दिखायी देना बंद हो जायगा। तीसरी चीज है—आपका मन। आप नेत्रोंसे तौलियेको देखते रहें; पर यदि मन यहाँ न होगा तो नेत्रोंके देखते हुए भी आपको यह तौलिया दिखायी नहीं पड़ेगी। चौथी चीज है—बुद्धि। बुद्धि यहाँपर मौजूद न होती तो इस बातका निर्णय किसने किया है कि 'यह तौलिया है, पत्थर या अन्य चीज नहीं?' इन चीजोंसे भी सूक्ष्म एक चीज और है। वह है—आपकी आत्मा। यदि आपकी आत्मा यहाँपर नहीं होती तो इस बातका अनुभव किसको हुआ कि यह तौलिया है? आत्मा परमात्माका ही स्वरूप है और वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर है। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि परमात्मा सर्वत्र, सभी चर-अचर भूतोंमें समानरूपसे व्याप्त है, पर अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे साधारण दृष्टिसे वह जाननेमें नहीं आता।

दृश्य-प्रपञ्चको परमात्माका स्वरूप मानकर तदनुसार आचरण एवं व्यवहार करना चाहिये।

संसार प्रकृतिका कार्य है—ऐसा आपके अनुभवमें आता है तथा पढ़े-लिखे लोग भी कहते हैं; पर भगवान्‌का कथन एवं संत पुरुषोंका कथन और अनुभव इसके सर्वथा विपरीत हैं। श्रीरामचरितमानसमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके श्रीमुखके वचन हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
(किष्किन्धाकाण्ड दो० ३)

'हे हनुमान्! अनन्य वही है, जिसकी ऐसी बुद्धि कभी नहीं टलती कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर (जड-चेतन) जगत् मेरे स्वामी भगवान्‌का रूप है।'

यही बात भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें बतलायी है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।
(७। १९)

'जो ज्ञानवान् पुरुष इस सचराचर रूपमें मुझ वासुदेवको अनुभव करता है, वह बहुत ही दुर्लभ है।'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार स्वयं भगवान् एवं महापुरुष यह बतलाते हैं कि दृश्य-प्रपञ्च प्रकृतिका कार्य नहीं, भगवान्‌का स्वरूप है। अतएव चाहे यह हमें भगवत्स्वरूपमें दिखलायी न पड़े, तब भी हमें ऐसा विश्वास कर लेना चाहिये; क्योंकि जो लोग वास्तवमें समझदार होते हैं, वे जो कुछ सामने प्रतीत होता है, उसको न मानकर जैसी वस्तुस्थिति होती है, उसीको मानते हैं और जो मूर्ख होते हैं, वे सामने जैसा, जो कुछ प्रतीत होता है, उसको वैसा ही मान बैठते हैं।

कई बार नये स्थानपर दिग्भ्रम हो जाता है और हम पूर्वको पश्चिम और पश्चिमको पूर्व मानने लगते हैं। पर ज्यों ही सूर्योदय होता है कि वह दिग्भ्रम दूर हो जाता है और वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। ग्रीष्म ऋतुमें मरुभूमिमें जलकी प्रतीति हो जाती है; पर निश्चय करनेपर यह स्पष्ट हो जाता है कि वह जल नहीं है, मरुस्थल है। इसी प्रकार विवेकके उदय होनेपर यह अनुभव हो जाता है कि यह दृश्य-प्रपञ्च प्रकृतिका कार्य नहीं, परमात्माका स्वरूप है। अतएव साधकको चाहिये कि महापुरुषोंके अनुभव एवं उनके वचन तथा स्वयं भगवान्‌की वाणीपर विश्वास करके इस दृश्य-प्रपञ्चको परमात्माका स्वरूप मानकर तदनुसार आचरण एवं व्यवहार करे।

दुर्गुण-दुराचाररूपी शत्रुओंपर विशेष ध्यान रखिये।

सदाचार एवं धर्मका पालन करते समय एक बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि जो हमारे साधनके शत्रु हैं, वे धर्म और ईश्वरभक्तिकी ही ओटमें छिपना चाहते हैं। जिस प्रकार दीपकके नीचे अँधेरा रहता है, उसी प्रकार साधनके शत्रु धर्म और ईश्वरभक्तिकी ओटमें छिपे बैठे रहते हैं। वे शत्रु कौन-से हैं? आलस्य, प्रमाद, भोग, पाप, द्वेष, पाखण्ड, मान-बड़ाईकी कामना आदि साधनके शत्रु हैं और ये मौका लगनेपर चोरी एवं डाका डाला करते हैं। इसलिये इन दुर्गुण-दुराचारोंको खोज-खोजकर नष्ट कर डालना चाहिये। घरमें छिपे चोर-डाकू बहुत अधिक धोखा दिया करते हैं, बाहरके चोर-डाकू उतना धोखा नहीं दे सकते। अतएव घरमें छिपे चोर-डाकुओंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये और मौका पाते ही इनको मार डालना चाहिये।

साधनमें उन्नति हो, इसके लिये यह आवश्यक है कि इस तथ्यको ठीकसे समझकर तदनुसार आचरण किया जाय। ऐसा करनेसे साधन ठीकसे चलेगा और आपका कल्याण होनेमें किसी प्रकारकी शङ्काकी बात नहीं रहेगी। किसी बातको ठीकसे समझना क्या है? वह बात जीवनमें धारण हो जाय। जबतक कोई बात धारण नहीं होती, तबतक यही मानना पड़ेगा कि आपने उस बातको अच्छी प्रकारसे अभी नहीं समझा है। यदि किसी वस्तुके लिये कहा जाय कि यह आपके लिये हानिकर है, आपका अहित करनेवाली है, तो क्या आप उस वस्तुको किसी भी रूपमें ग्रहण कर सकते हैं? कभी नहीं। अपनी समझसे तो आप अपनी हानि करनेवाली वस्तुको भूलकर भी ग्रहण नहीं करेंगे और न उसे ग्रहण करनेकी बात सोचना ही चाहेंगे। इसी प्रकार यदि यह समझमें आ जाय कि आलस्य, प्रमाद आदि हमारे शत्रु हैं और वे हमारे अंदर ही छिपे बैठे हैं, तो आप कभी भी इन्हें प्रोत्साहन नहीं देंगे, अपितु उनके विनाशके लिये जी-जानसे प्रयत्न करेंगे। अतएव आवश्यकता इसी बातकी है कि आलस्य, प्रमाद आदि हमारे परम शत्रु हैं—इस बातपर दृढ़ विश्वास कर लिया जाय।

विश्वास कीजिये—भगवान्‌की सामर्थ्यके सामने दोषोंकी कुछ भी सामर्थ्य नहीं है।

अपने मनमें यह विश्वास रखना चाहिये कि सब समय भगवान्‌को याद रखनेसे साधनमें उत्तरोत्तर वृद्धि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होकर निश्चय ही हमारा कल्याण हो सकता है। ऐसा दृढ़ निश्चय रखते हुए साधनके लिये पूरा प्रयत्न करना चाहिये। साथ ही यह आशा रखनी चाहिये कि साधनके द्वारा हमारी अवश्य उन्नति होगी और हम जल्दी-से-जल्दी भगवान्‌का दर्शनलाभ कर सकते हैं। हमें उन्नतिकी निरन्तर प्रतीक्षा करनी चाहिये। हम अपने किसी प्यारे स्वजनके आनेकी जैसी प्रतीक्षा करते हैं, वैसी ही प्रतीक्षा हमें अपनी साधनाकी उन्नतिके लिये करनी चाहिये।

अपनेमें जितने दुर्गुण एवं दुराचार हों, उनके नाशके लिये मनमें साहस रखना चाहिये। दुर्गुण एवं दुराचारोंका नाश होना भगवत्कृपासे कोई कठिन काम नहीं है। अतएव भगवत्कृपाका बल रखते हुए प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करनेपर भी इन दुर्गुणोंका जितना नाश होना चाहिये, उतना नाश होता हुआ दिखायी न दे तो हमें छान-बीन करनी चाहिये कि अपने साधनमें क्या त्रुटि है। खोज करनेपर साधनमें जो त्रुटि दिखायी दे, उसको पूरी तत्परतासे दूर करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मनमें यह विश्वास रखना चाहिये कि भगवान्‌की सामर्थ्यके सामने दोषोंकी कुछ भी सामर्थ्य नहीं है। सद्गुण-सदाचारकी प्राप्तिमें इस प्रकारका विश्वास रखना चाहिये कि उनकी प्राप्ति बहुत ही शीघ्र अनायास हो सकती है; क्योंकि ये आत्माके स्वाभाविक धर्म हैं। यदि हममें सद्गुण एवं सदाचारकी वृद्धि नहीं होती तो उसमें हमारी मूर्खता ही हेतु है, दूसरा कोई हेतु नहीं। अपनी इस मूर्खताके लिये हमें लज्जा एवं शर्म आनी चाहिये और सद्गुणोंकी प्राप्ति नहीं हो पा रही है, इसके लिये मनमें दुःख करना चाहिये। यदि वास्तविक दुःख होगा तो सद्गुण एवं सदाचारके आनेमें विलम्ब नहीं होगा।

लाज राखौ गिरिधारी

अब की टेक हमारी, लाज राखौ गिरिधारी !
जैसी लाज रखी पारथ की, भारत जुद्ध मँझारी।
सारथि ह्वै कै रथ कौं हाँक्यौ चक्र सुदरसन धारी।
भक्त की टेक न टारी॥
जैसी लाज रखी द्रौपदि की, होन न दीन्हि उघारी।
खैंचत-खैंचत दोउ भुज थाके, दुस्सासन पचि हारी।
चीर बढ़ायौ मुरारी॥
सूरदास की लज्जा राखौ, अब को है रखवारी।
राधे राधे श्रीवर प्यारी श्रीवृषभानदुलारी।
सरन तकि आयौ तुम्हारी॥

—श्रीसूरदासजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थकी पगडंडियाँ

[नित्यलीलालीन परम श्रद्धेय श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)के अमृत-वचन]

भगवान्‌के साथ हमारा एक बार संयोग हो जानेपर फिर कभी वियोग नहीं हो सकता। थोड़ा-सा भी संयोग हो जाय तो भी भगवान् उसे छोड़ते नहीं। पर यह बात भगवान्‌में ही है। संसारकी वस्तु तथा यहाँके प्राणि-पदार्थ तो संयोग-वियोगशील हैं ही। जो सारी ममताको छोड़कर भगवान्‌का हो जाता है, भगवान् सदा उसको बड़े लोभसे अपने हृदयमें बसाये रखते हैं—

अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

हमारे हृदयमें प्रभु रहें, हमारे हृदयका संयोग प्रभुसे सदा बना रहे, कभी बिछोह हो ही नहीं, तो भगवान्‌की भी ममता हमारे प्रति हो जाती है। भगवान् कहते हैं—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(भागवत ९। ४। ६५, ६८)

अर्थात् 'जो स्त्री, मकान, पुत्र, बन्धु-बान्धव, प्राण-धन, इहलोक, परलोक आदि सभीको छोड़कर—सबकी ममता त्यागकर मेरे शरण आ जाता है, उसको मैं कैसे छोड़ दूँ···ऐसा साधु मेरा हृदय है और मैं ऐसे साधुका हृदय हूँ; वह मेरे सिवा और किसीको नहीं जानता, मैं उसके सिवा और किसीको नहीं जानता।'

भगवान् सदा हमारे अपने हैं, पर हम उनके नहीं होते—हम अपनी सारी ममता उनको नहीं देते; इसीलिये हम उनकी ममतासे वञ्चित रहते हैं, उनके हृदयमें लोभीके धनकी भाँति स्थान नहीं पाते।

× × × ×

जगत्‌के पदार्थोंकी आशा रखना, किसी भी रूपमें इन्द्रिय-भोगोंमें सुख समझना और उनकी कामना करना, शरीरके आराम तथा मान आदिके लिये इच्छा करना—ये ही सब दुःख, अशान्ति और विपादके कारण हैं। नित्य-निरन्तर हर हालतमें भगवान्‌की कृपाका अनुभव करते हुए, प्रत्येक स्थितिमें संतोष मानते हुए केवल भगवान्‌का ही आश्रय करनेसे अशान्ति-दुःख मिट सकते हैं। बस, भगवान्‌का स्मरण-भजन होता रहे, फिर शरीर चाहे जिस हालतमें रहे। इन्द्रियसुखोंसे सर्वथा उपराम होकर मन भगवान्‌का चिन्तन करता रहे। यहाँकी प्रत्येक वस्तु अनित्य (नष्ट होनेवाली) और अपूर्ण (अभावका ही अनुभव करानेवाली) है। इनसे सुख कैसे हो सकता है? सुख विषय-वैराग्य और भगवान्‌के भजनमें ही है। अतएव जगत्‌को भूलकर केवल भगवान्‌में ही रमे रहो। संसारका सुख केवल मृगतृष्णाके समान है। यहाँ सुखका लेश भी नहीं है।

× × × ×

संसारमें मिलन-अमिलन तो प्रायः प्रारब्धाधीन हैं और इसमें महत्त्व ही क्या है? सच्ची बात तो यह है कि हमारे मनमें सदा भगवान्‌से मिलनकी चाह जाग्रत् रहनी चाहिये और वे भगवान् सदा मिले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुए हैं ही। चाह उनकी मधुर स्मृति कराती है, जो मिलनसे भी बढ़कर सुखदायिनी होती है। इससे भगवत्प्रेमीजन भगवान्‌की वियोगजनित पीड़ामें उनकी मधुर स्मृतिका अति मधुर आस्वादन पाकर परमातिशय सुखका अनुभव करते हैं। हम सबको, बस, उन सच्चे सुहृद् परम प्रेमी, माधुर्य-सौन्दर्य-कारुण्य-औदार्य-सौशील्यके अगाध समुद्र भगवान्‌की स्मृतिमें ही डूबे रहना चाहिये। मनुष्य तो बालूकी भीत है; कब ढह जाय, क्या पता है। बिजलीकी चमकका क्या भरोसा? बस, हमलोगोंके जीवनका एकमात्र आधार, आश्रय, लक्ष्य, गति—सब कुछ भगवान् ही होना चाहिये।

× × × ×

'प्रभु ही जीवनके सब कुछ बन जायँ, अपना कुछ रह ही न जाय'—ऐसी इच्छा बहुत ही ठीक है। सच्ची इच्छाको भगवान् अवश्य पूरी करते हैं। तुम ऐसा मानते ही क्यों हो कि भगवान्‌ने कुछ बाकी रखा है। तुम, बस, विश्वास करके यों मान लो कि 'भगवान् ही मेरे हैं और मैं उनका हूँ।' उनकी कृपा तो अपार है ही और वह भी अहैतुकी। पर प्रेममें कृपाकी भी कोई महत्ता नहीं है। प्रेमीके प्रेम-रसास्वादनके लिये भगवान् स्वयं ही लालायित रहते हैं। हम ऐसे भगवान्‌के सुखमें सुखी रहनेवाले बन जायँ कि बस, भगवान्‌को ही हमारी सदा चाह बनी रहे। वे हमें अपने पास रखनेमें और हमारे पास रहनेमें ही सुखका अनुभव करें।

× × × ×

तुम्हारे ये शब्द मुझे बहुत अच्छे लगे—'अब तो प्रभुकी शरणमें आ गया हूँ। सब तरफसे मन-बुद्धि-इन्द्रियोंको समेटकर प्रभुके चरणोंमें रख देता हूँ, प्रभुके चरणोंमें लगा देना चाहता हूँ। मैं अब संसारके प्राणि-पदार्थोंके लिये नहीं रोता, अब तो प्रभुके लिये ही रोना रह गया है। मेरे मन-बुद्धि-प्राणोंपर, रोम-रोमपर, श्वास-श्वासपर प्रभुका अधिकार है। मेरा अपना कुछ भी नहीं है। प्रभुकी अखण्ड मधुर स्मृति ही मेरी है, उसमें अपने-आपको भूल जाऊँ, अपने-आपको सदाके लिये खो दूँ, अपनेको डुबो दूँ। मेरी अपनी अलग कामना, वासना, इच्छा आदि रहे ही नहीं।' भगवान्‌को ये भाव अत्यन्त प्रिय हैं। तुमपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है, जो तुम्हारे मनमें ऐसे सद्भावोंकी उत्पत्ति होती है। भगवान्‌के शरणापन्न होनेवालोंके लिये ये परम आदर्श भाव हैं।

× × × ×

मनुष्य भूलसे भगवान्‌की आशा न करके, भगवान्‌की शरण न होकर—सांसारिक प्राणि-पदार्थोंका आशा-भरोसा करते हैं, उनके शरणापन्न होना चाहते हैं; इसीसे उन्हें निराश तथा दुखी होना पड़ता है।

× × × ×

भगवान्‌की कृपा एवं उनके मङ्गलविधानपर विश्वास करनेवालेको सदा प्रत्येक परिस्थितिमें संतुष्ट तथा प्रसन्न रहना चाहिये। जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, मान-अपमान, प्राप्ति-विनाश, संयोग-वियोग, अनुकूलता-प्रतिकूलता—सभी मङ्गलमयकी मङ्गलमयी लीलाके मङ्गलमय दृश्य हैं। इन सभी दृश्योंमें मधुर आनन्द-सुधासे परिपूर्ण लीलामयकी लीलाचातुरीको देख-देखकर सुप्रसन्न होना चाहिये।

× × × ×

तुम मनमें बहुत-बहुत प्रसन्न रहना, किसी प्रकार भी दुखी मत होना। मैं तुमसे यह सुनना चाहता हूँ कि 'मेरे लिये जगत्‌में दुःख नामकी कोई वस्तु है ही नहीं।' भगवान्‌के प्रेम-राज्यमें तो दुःखकी कल्पना ही नहीं है। उनके जगत्‌में वस्तुतः दुःख नहीं है। उनका जगत् भी सच्चिदानन्दस्वरूप ही है। हम जगत्‌में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उनको न देखकर भोगोंको देखते हैं, इसीसे जगत् 'दुःखालय'के रूपमें प्रतीत होता है। तुम यह मान लो कि तुम्हारे लिये जगत्में दुःख बना ही नहीं है। तुम परिस्थितियोंमें सुख-दुःखकी कल्पना क्यों करते हो?

× × × ×

अनन्य प्रेमकी प्राप्ति प्रभु-कृपासे ही होती है; पर प्रभु-कृपा तो अपनेपर असीम, अनन्त है ही। हमारे विश्वासकी ही कमी है। 'उनका भजन नित्य-निरन्तर होता रहे, कभी भी क्षणभरके लिये भी उन्हें भूला न जाय, अपने साधनका कोई बल न रह जाय'—यह मनोभावना बड़ी ही सुन्दर है तथा भगवान्‌को सुख देनेवाली और उनके अनन्य भजनकी स्थितिको समीप लानेवाली है। हम जो कहते हैं—'हम सर्वथा प्रभुके बन जायँ और प्रभु हमारे बन जायँ'—सो प्रभु तो नित्य हमारे हैं ही। हम प्रभुके पूरे बन नहीं पाते, इसीसे प्रभुके हमारे होनेका हमें अनुभव नहीं होता। रही पाप-तापकी बात, सो पाप-ताप तो उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं, जिस क्षण हम प्रभुके सम्मुख होते हैं।

× × × ×

संसारकी अनित्यता, क्षणभङ्गुरता तथा दुःखमयताको देखकर भी हमारे मनमें वैराग्य नहीं होता, यही तो मोह है। यह मोह मिट जाय तो फिर राग-द्वेष आदि, जो बन्धन और दुःखके प्रधान कारण हैं, रहें ही नहीं। इसके लिये भगवान्‌की कृपा ही एकमात्र उपाय है।

× × × ×

घरवालोंके सम्बन्धमें तुमको अपने मनमें जरा भी दुःख नहीं मानना चाहिये। वे तो बेचारे निमित्त-मात्र हैं। घरवाले तुम्हारे साथ जो व्यवहार करते हैं, उसमें भी भगवान्‌का मङ्गलविधान ही काम करता है, जो तुम्हारे अच्छेके लिये ही होता है। इसपर विश्वास रखना।

× × × ×

जगत्‌की वस्तुका यह स्वभाव है कि जिस वस्तुको मनुष्य चाहता है, वह सहज नहीं मिलती। या अलग हो जाती है तो उसकी स्मृति बहुत बढ़ जाती है और कहीं-कहीं तो उस मधुर स्मृतिका निरन्तर अमृत-प्रवाह बहने लगता है, जो समीप रहनेकी अपेक्षा अधिक सुखद और सरस होता है। अवश्य ही सांसारिक प्राणि-पदार्थोंमें या सांसारिक प्राणि-पदार्थोंके लिये ऐसी वृत्ति होनेपर उसका नाम 'आसक्ति' होता है तथा उसका फल दृढ़ बन्धन होता है। वही भगवान्‌में या भगवान्‌के लिये होनेपर उसका नाम 'प्रेम' होता है। और प्रेम तो स्वयं फलरूप ही होता है, उसका कोई दूसरा फल नहीं होता। जिस प्रेमका कोई दूसरा फल हो सकता है, वह प्रेम नहीं है, प्रेमके नामपर कामकी ही वहाँ क्रीड़ा होती है। भगवत्प्रेमीगण भगवत्सङ्गकी अपेक्षा भी भगवान्‌की नित्य स्मृतिको अधिक महत्त्वकी वस्तु मानते हैं। इसलिये कहीं-कहीं भगवान्‌का वियोग भी भगवान्‌की मधुर स्मृतिका कारण होनेसे भक्तोंके—प्रेमियोंके लिये अधिक वाञ्छनीय माना गया है।

× × × ×

भगवान् हमारे गुणोंको देखकर हमें अपनाते हों, ऐसी बात नहीं है। वे केवल देखते हैं हमारी भावनाको। गुण-दोषका विचार उनके हृदयमें अपनोंके प्रति नहीं होता। हमें उनकी स्वाभाविक वत्सलतापर भरोसा रखना चाहिये।

× × × ×

निरन्तर भगवान्‌के प्रेममें विभोर रहना तथा किसी भी प्रकारकी कोई चाह या किसी भी स्थितिकी कोई परवा न रखकर प्रतिपल उनके मधुर मुस्कानयुक्त मुख-कमलको हृदयके पवित्र तथा एकदर्शी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नेत्रोंसे निहारते रहना चाहिये। तुमको इसमें बिना किसी संदेहके विश्वास रखना चाहिये कि 'भगवान्ने तुमको अपना लिया है।' अतः तुमको अब निश्चिन्त हो जाना चाहिये; अब चिन्ता या चिन्तन करना है, तो केवल चिन्तामणिचतुर प्रभुका। रात-दिन उन्हींके साथ घुल-मिलकर रहना है, उन्हींका स्मरण करना है तथा उनके सिवा जगत्का कोई चिन्तन रहे ही नहीं। जगत्का कभी कोई चिन्तन हो तो वह भी केवल उन्हींके सम्बन्धसे केवल उन्हींको लेकर। अन्य किसीकी सत्ता न रहे और न किसीसे सम्बन्ध ही रहे। ऐसा विश्वास करो एवं ऐसा बार-बार निश्चय करो कि 'तुम ऐसे बन गये हो'।

× × × ×

संसारके चित्र कभी मनमें आयें तो या तो उन्हें ललकारकर निकाल दो या उन्हें प्रभुके बना दो। तुम कहोगे कि 'मुझमें कोई बल नहीं है, कोई सामर्थ्य नहीं है'। ठीक है। पर प्रभुमें तो सब सामर्थ्य है। तुम केवल इच्छा और निश्चय करो फिर सारा काम बना-बनाया ही है। तुम्हें अपने बलकी कोई आवश्यकता नहीं। तुम्हारी तो अनन्य इच्छा, अकाट्य निश्चय होना चाहिये; फिर प्रभु अपनी चीजको आप ही सँभालेंगे, उन्हें कहनेकी आवश्यकता नहीं है। हम केवल यही मानते रहें—'हम केवल उन्हींकी चीज हैं। उनके सिवा हमारा न कोई है न किसीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध है। सारे नाते-नेह, सारी प्रीति, सारा अपनापन, आत्मीयताका सम्बन्ध एकमात्र उन्हींसे है। सब कुछ वे ही हैं।' बार-बार सोचो, निश्चय करो, अनुभव करो—ऐसा ही है, ऐसा ही है। तुम्हारे निश्चयसे ही तुम्हें अनुभव हो सकता है कि जीवन-मरण, सुख-दुःख भी वे ही हैं।

× × × ×

तुमने अपने विषयमें जो कुछ लिखा, उससे तुम्हारे मनमें चलते हुए दो भाव-प्रवाहोंका पता लगता है—(१) कभी तो तुम अपनेको बहुत दुखी मानते हो तथा (२) कभी हृदयमें प्रभुकी बहुत मीठी स्मृतिके परमानन्दका अनुभव करते हो। तुम्हारी इस द्विविध मनोवृत्तिसे तुम्हारे हृदयके प्रभु-प्रेमका पता लगता है। प्रेम तो कभी यह कहना जानता ही नहीं—'मैं पूरा हो गया'; उसमें तो सदा कमीका अभाव ही अनुभव होता है। तुम्हारी यह चाह सचमुच प्रेमकी ही शुभ चाह है कि 'मेरी चित्तवृत्ति एकमुखी बन जाय। मेरे चित्तमें दूसरी बात रहे ही नहीं, नित्य-निरन्तर प्रभुकी मधुर-मधुर स्मृतिमें ही मन डूबा रहे, दूसरी कोई बात सुहाये ही नहीं आदि।' यह चाह ही प्रभुकी नित्य अखण्ड स्मृति बनी रहनेका परम साधन है।

× × × ×

'तुम्हारा श्रीभगवान्में मन समर्पित हो जाय, तुम भगवान्के हो जाओ, भगवान् तुम्हारे हो जायँ'—यह मैं हृदयसे चाहता हूँ। मैं तो मानता हूँ कि तुम भगवान्के ही हो, भगवान्ने तुमको स्वीकार कर लिया है। हृदयमें भगवान्की स्मृति हो—इसका बहुत मूल्य है। मैं तो प्रत्येक व्यक्तिसे यही कहता हूँ कि 'मनमें भगवान्की स्मृति निरन्तर बनी रहे और एक क्षणके लिये भी उनका विस्मरण न हो, तभी जीवनकी सफलता है।'

× × × ×

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने जो कुछ कहा है, उसका अक्षर-अक्षर सत्य है। भगवान्ने जो कुछ कहा है, वे वैसा ही करनेको सदा तैयार रहते हैं और निश्चित वैसा ही करते भी हैं। जो उनके वचनोंपर विश्वास करके उनका बन जाता है, उसको वे तुरंत अपनाकर आत्मसात् कर लेते हैं, अपने हाथका यन्त्र बना लेते हैं—इसमें जरा भी संदेह नहीं करना चाहिये। (पुराने पत्रोंसे संगृहीत)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भक्तिदर्शनकी कतिपय विशेषताएँ—२

(लेखक- अनन्तश्री स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

[गताङ्क पृष्ठ ९७३ से आगे]

१०—भक्तिका परिपाक

जैसे 'मैं जानता हूँ', 'मैं चाहता हूँ'—ये वृत्तियाँ स्वप्रत्यक्षगम्य हैं, वैसे ही 'मैं अनुरागी हूँ', 'सेवक हूँ'—ये वृत्तियाँ भी स्वप्रत्यक्षगम्य ही हैं। परंतु इनके परिपाकका निर्णय प्रत्यक्षके द्वारा नहीं हो सकता। लोकमें जानकारी, चाह, अनुराग, सेवा—ये सब बदलते हुए देखे जाते हैं। अतः लौकिक दृष्टिसे ही इनके सम्बन्धमें निर्णय किया जा सकता है। जैसे अपने प्रियतमके नाम, चरित, चिह्न आदिके दर्शन-श्रवणसे आँखोंमें आँसू, शरीरमें रोमाञ्च, मुँहकी लाली आदि देखकर हृदयके प्रेमका अनुमान किया जाता है, वैसे ही भक्तिके सम्बन्धमें भी है। महात्माओंने भिन्न-भिन्न शास्त्रोंमें इनका वर्णन किया है, यथा—

(१) सम्मान—चाहे अर्जुन किसी भी अवस्थामें हों, श्रीकृष्णका दर्शन होते ही भक्ति और प्रेमसे उठकर खड़े हो जाते थे।

(२) बहुमान—राजा इक्ष्वाकु कमल, कृष्णसार मृग और मेघको देखकर कमलनयन कृष्ण और मेघश्यामके स्मरणमें मग्न होकर उनका भी सत्कार करते थे, अर्थात् जिस नाम, रूप, वस्तु, चिह्न या सम्बन्धसे अपने प्रियतमका स्मरण हो, उसका भी आदर करना भक्तिका अनुभाव है।

(३) प्रीति—विदुर कहते हैं—'पुण्डरीकाक्ष! आपके इस घरमें स्वयं पधारनेसे जिस प्रीति, तृप्ति और आनन्दका उदय हुआ है हृदयमें, उसे मैं क्या बताऊँ? आप तो हृदयमें ही विराजमान अन्तरात्मा हैं।'

(४) विरह—गोपियाँ कहती हैं—'सखि! क्या बताऊँ, गुरुजनोंके सम्मुख कहना योग्य नहीं है। अथवा, सखि! हम जब विरहकी आगसे जली जा रही हैं, तब ये गुरुजन हमारा क्या कर लेंगे?'

(५) इतर-विचिकित्सा (इष्टदेवसे भिन्नके प्रति संदेहयुक्त दृष्टि)—शिवभक्त उपमन्यु वर देनेके लिये आये हुए इन्द्रसे कहते हैं—'मैं शंकरजीकी आज्ञासे कीट-पतंग बन जाऊँगा, परंतु इन्द्र! मैं तुम्हारा दिया हुआ त्रिलोकीका राज्य भी नहीं चाहता।'

(६) महिमाकी बुद्धि—यमराजने नरकमें दुःख भोगते हुए प्राणियोंसे कहा—'तुमने क्लेश-निकन्दन केशवदेवकी आराधना क्यों नहीं की?' यमराजने अपने दूतोंके कानमें भी कहा—'मैं वैष्णवोंका शासक नहीं हूँ। तुम उन्हें मेरे लोकमें मत लाया करो।'

(७) तदर्थ प्राणस्थिति—श्रीहनुमान्‌जीने भगवान् रामचन्द्रसे कहा—'मैं आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये पृथिवीपर तभीतक रहूँगा, जबतक संसारमें आपकी पावनी कथा सुननेको मिलती रहेगी।'

(८) तदीयता—उपरिचर वसु कहते हैं—'मेरा सब कुछ—शरीर, राज्य, धन, पत्नी, पुत्र, वाहन भगवान्‌का ही है।' उनकी ऐसी दृष्टि निरन्तर बनी रहती थी।

(९) सबमें भगवद्भाव—प्रह्लादका कहना था—'जो कुछ—मैं-मेरा, तू-तेरा और निखिल जगत् है, वह सब भगवद्रूप ही है।'

(१०) अप्रतिकूलता—भगवान् अपनी मान्यता और मनके विपरीत करें, तब भी उनके अनुकूल ही रहना। भीष्मको मारनेके लिये रथका चक्का लेकर श्रीकृष्ण दौड़े। भीष्मपितामह कहते हैं—'आइये-आइये, प्रभु! अपने कर-कमलोंसे ही इस शरीरका अन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर दीजिये। आपकी मार दुलार और प्यारसे भी बड़ी है।' इत्यादि।

११—भक्तिका अधिकारी

सभी दर्शनोंमें और धर्मशास्त्रोंमें अनुबन्ध-चतुष्टयके प्रसङ्गसे अधिकारीका विचार मिलता है। जैसे ब्रह्म-विचारमें शम-दमादिसम्पन्न मुमुक्षु अधिकारी है। यज्ञ-यागादिके अनुष्ठानमें अर्थी, समर्थ, विद्वान् एवं शास्त्रद्वारा अनिषिद्ध अधिकारी है। शास्त्रीय निषेध वर्णाश्रमकी दृष्टिसे होते हैं। ब्राह्मण राजसूय नहीं कर सकता और क्षत्रिय बृहस्पति-सव। परंतु भक्तिमें सबका समान अधिकार है। अज्ञातकर्तृक 'भक्तिमीमांसा'में कहा गया है कि यदि अधिकारीको कुछ विशेषण देना ही हो तो उसे नामादिके उच्चारणमें समर्थ, इच्छुक अथवा ज्ञाता कहा जा सकता है। उसे किसी भी अवस्थामें शास्त्रद्वारा निषिद्ध नहीं कहा जा सकता। **'सामर्थ्यमर्थिता विद्या वाधिकारिविशेषणं नान्यदश्रुतेः।'** भक्तिमें ज्ञानकी भी उतनी अपेक्षा नहीं है; क्योंकि ज्ञानतः-अज्ञानतः—कैसे भी नामोच्चारण किया जाय, वह अज्ञात अमृतके समान अपना फल देता है—**'अज्ञानादथवा ज्ञानात्'** (भागवत), **'अविदुषाम्'** (भा०)। अपेक्षित ज्ञान गुरूपदेशसे भी प्राप्त हो सकता है। पूर्वजन्मके श्रवणादि-संस्कार भी उदित हो सकते हैं। मनुस्मृति और महाभारतमें भी ऐसे प्रसङ्ग हैं। **'अन्त्यादपि परं धर्मम्'**—अन्त्यजसे भी श्रेष्ठ धर्म (आत्मज्ञान) का ग्रहण करे' (मनु० २।२३८)।

जैसे अपने स्वामी, माता-पिता—और तो क्या, अपने आत्माको सुख पहुँचानेका, सेवा करनेका सभीको अधिकार होता है, उसी प्रकार सबके पिता, सबके स्वामी, सबके आत्मा परमेश्वरकी सेवा—प्रेममयी भक्ति करनेका सभीको अधिकार है। इसीसे शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्रमें यह निर्देश है—**'आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात्सामान्यवत्'** (२।२।७८)—जो नीच-से-नीच योनिमें उत्पन्न हुए हैं, वे भी भक्तिके अधिकारी हैं, क्योंकि सभी समानरूपसे दुःखकी निवृत्ति चाहते हैं और उन्हें भी इतिहास-पुराण, गुरुपरम्परा आदिके द्वारा भजनीयके स्वरूपका ज्ञान और भजनकी प्रक्रिया ज्ञात हो ही सकती है। इस सूत्रकी टीका 'भक्तिचन्द्रिका'में एक श्रुति उद्धृत की गयी है—

'अपि वा चाण्डालः शिव इति वाचं वदेत् तेन सह संवसेत्'।

भक्तिसिद्धान्तमें यह बात मान्य है कि भक्ति प्रारब्धजन्य जात्यादिकृत अपवित्रताको भी मिटा देती है। **'श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते'** (भा० ३।३३।६)। इसकी व्याख्यामें श्रीजीवगोस्वामीने कहा है कि 'अधिकारीको यज्ञ-यागादि करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह फल भक्तको नाम-श्रवण-कीर्तनादिसे ही प्राप्त हो जाता है।'

आङ्गिरस भक्ति-दर्शनमें सबके अधिकारी होनेका यह हेतु बताया गया है कि भगवान्‌की भक्तिमें सबकी समता है, अर्थात् हृदयमें अनुराग, भगवदाकार वृत्तिका भगवान्‌में विलय, नामकीर्तन आदि सभी कर सकते हैं। अनुरागमें अधिकार-भेदका प्रश्न ही कहाँ है? जिसके हृदयमें भगवान्‌के प्रति अनुरागका उदय हो जाता है, वह चाहे कोई पशु-पक्षी भी क्यों न हो, पवित्र हो जाता है—**भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।'** (भा० ११।१४।२१)

नारद-भक्तिदर्शनमें स्पष्ट कह दिया गया है कि 'भक्तोंमें जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, क्रिया आदिका भेद नहीं होता। इसका कारण यह है कि वे सब इन बाह्य भेदोंकी ओरसे दृष्टि हटाकर भगवान्‌के सम्मुख हो जाते हैं, भगवान्‌के अपने हो जाते हैं' (सूत्र ७२-७३)।

सबका निष्कर्ष यह है कि जैसे अन्यान्य साधनोंमें विविध प्रकारके अधिकार-भेद होते हैं, वैसा अधिकार-भेद भक्ति-मार्गमें नहीं है। यह इसकी एक असाधारण विशेषता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१२—ध्यान-सम्बन्धी नियम

भक्तिसिद्धान्तमें कहाँ बैठकर, किस समय, किस रूपका ध्यान किया जाय—ऐसा कोई नियम नहीं है। जहाँ कर्मकाण्डमें, 'पूर्वदिशामें ब्रह्मयज्ञ करे', 'प्राचीप्रवण होकर वैश्वदेव-याग करे,'—ये सब नियम होते हैं, वैसे भक्तिमें नहीं। कहीं भी, किसी ओर मुख करके बैठ जाइये। 'अपराह्णमें पितृयज्ञ करना चाहिये, वसन्त ऋतुमें अग्न्याधान' इत्यादि कालनियम भी भक्तिमें अपेक्षित नहीं हैं। अपने इष्टदेवको सोते, बैठते, चलते, खाते-पीते—किसी भी अवस्थामें देख सकते हैं। इस प्रकार पूर्वमीमांसाके कोई नियम भक्तिमें मान्य नहीं हैं। ऐसा होनेका कारण है—पूर्वमीमांसामें ईश्वरकी आवश्यकता ही नहीं। पूर्वमीमांसाकी दृष्टिमें वह न जगत्का आधार है न उपादान, न कर्ता है न फलदाता, न वेदका वक्ता है न हमारा अन्तर्यामी स्वामी। वहाँ तो कर्म ही सब कुछ बना बैठा है। ईश्वरकी करुणाका लेश भी नहीं है। अपना पौरुष बेचारा कहाँतक, क्या करे? भक्तिसिद्धान्तमें सब कुछ ईश्वर हैं; उसका अनुग्रह, करुणा-प्रसाद जीवका सर्वस्व है। इसलिये जीव, जहाँ कहीं, जब कभी, जिस किसी रूपसे उसका स्मरण करता है, वहाँ और उसी समय, वह अनुकम्पा-कम्पित होकर जीवके भीतर-बाहर प्रकट हो जाता है।

वस्तुतः हम अगले जन्ममें या परलोकमें कुछ प्राप्त करनेके लिये ईश्वरका ध्यान करते हों और उसके लिये अपूर्वोत्पादनकी अपेक्षा हो, तब हमें बहुत-से देश-काल आदि नियमोंके बन्धनमें बँधना पड़े। जब हम केवल यह चाहते हैं कि हम प्यारेको देखें और वह हमें देखे, तब स्थान और समयका बन्धन नहीं हो सकता। 'खटखट' 'पटपट'—चाहे जो भी संकेत हो सकता है। पथपर चलते-चलते या झरोखेसे झाँकते-झाँकते भी नयन-तृप्ति हो सकती है। भक्तिका ध्यान है—मनस्तृप्ति, आनन्दका आविर्भाव। जहाँ चित्त निर्मल हो, जहाँ इष्टदेवका स्मरण हो, जहाँ उनके रूप-लीला-नाम-धाममें तन्मयता हो, वही काल, वही देश, वही स्थिति सर्वोत्तम है। भक्तिका ध्यान, अर्थात् तत्काल भजन-रसका अनुभव। इसमें अदृष्ट नहीं, दृष्ट सुखकी प्रधानता है।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में और गीतामें जो स्थानकी समता, पवित्रता आदिका वर्णन है, वह प्राणायामकी दृष्टिसे है। प्राणायाममें गर्मी-सर्दी, धूल-धक्कड़ होनेसे स्वास्थ्यकी हानि होती है। भक्तिमें हम इतने समयसे इतने समयतक, केवल इस स्थानमें, केवल इस अवस्थामें अपने प्रियतम-को सुख पहुँचायेंगे, दूसरे समयमें, दूसरी जगह, दूसरी अवस्थामें नहीं, यह नियम हो ही नहीं सकता। यह सिद्धान्त वेदान्तदर्शनको भी अभीष्ट है—

'यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात्।' (ब्रह्मसूत्र ४। १। ११)

अतः पूर्वमीमांसाकी रीतिसे ध्यानका नियम भक्तिदर्शनको मान्य नहीं है। यह भी भक्तिदर्शनकी दूसरी असामान्य विशेषता है।

१३—थोड़ी-सी भक्तिमें भी महापाप-निवारणकी शक्ति है।

भगवान्का थोड़ा-सा भी स्मरण अथवा नामकीर्तन बड़े-से-बड़े पापोंको नष्ट कर देता है। श्रीमद्भागवतमें अज्ञानसे उच्चरित भगवन्नामको भी महापापका दाहक माना है। संकेत, परिहास, टेक, डाँट-फटकार और अवहेलनासे भी नामोच्चारण समस्त पापोंका नाशक होता है। अजामिलने मरते-मरते अपने 'नारायण' नामक पुत्रको पुकारा था और वह कल्याणपथका पथिक हो गया था। सात्वतसंहितामें कहा गया है कि 'अशुद्ध रूपमें उच्चारण किया हुआ नाम भी कानमें पड़नेपर मुक्तिका साधन हो जाता है।'

जहाँ अज्ञान है, वहाँ श्रद्धाका तो प्रश्न ही नहीं उठता। तब जिज्ञासा होती है कि 'बिना ज्ञान और

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रद्धाके दुष्टचित्त पुरुष भी यदि नामका फल प्राप्त करता है, तो इसका कोई महान् कारण होना चाहिये ।' यही विवेचनका विषय है । धर्मानुष्ठानमें शास्त्रोक्त अधिकारी, विधि-विधान, द्रव्य, समय, स्थान, मन्त्र आदिकी समग्रता अपेक्षित होती है । उससे जो अपूर्व उत्पन्न होता है, वह कर्तामें रहता है और समयपर अपना फल प्रकट करता है । परंतु भक्तिमें ऐसी बात नहीं है । भक्तिसिद्धान्तमें जीवका पौरुष अकिंचित्कर है, भगवान्का अनुग्रह ही सब कुछ है । नाम, धाम, स्मरण, पूजाका कोई भी बहाना मिला और भगवान्की कारुण्यशक्ति वहाँ अवतीर्ण हो गयी । वहाँ जीवका पौरुष जीवका हित नहीं करता, भगवान्की अनुकम्पा ही जीवका कल्याण करती है । अतएव वास्तविक नामकी आवश्यकता नहीं पड़ती, नामाभाससे ही भगवान्की कृपा उतर आती है । धर्म-'त्वं'-पदार्थ-प्रधान है और भक्ति 'तत्'-पदार्थ-प्रधान—यह पहले ही कह चुके हैं ।

अब प्रश्न यह होता है 'कि जब अत्यन्त हल्के-फुल्के नामाभाससे भी संतुष्ट होकर प्रभु सब पापोंका विनाश कर देते हैं, तब कोई कृच्छ्रचान्द्रायण, सांतपन, क्षौर, तीर्थस्नान, सांवत्सरव्रत आदि बड़े-बड़े प्रायश्चित्त क्यों करे ?' इसका उत्तर यह है कि पहले तो इतने बड़े-बड़े प्रायश्चित्तोंके जानकार महाजनोंको यह विश्वास ही नहीं होता कि नामोच्चारणमात्रसे गुरुतम पापोंका प्रायश्चित्त हो सकता है । स्वल्पपुण्यवान्को नामादिपर विश्वास नहीं होता । दूसरी बात यह है कि एक ही रोगका औषध सेरभर काष्ठौषधि भी हो सकती है और जीरेभर संजीवनी बूटी भी । परंतु जो संजीवनीको पहचानता नहीं, वह उसको औषध कैसे मानेगा और कैसे बतायेगा ? अतः जिनकी रुचि महान् अनुष्ठानोंमें है, वे महान् अनुष्ठान करेंगे और जिनकी रुचि मृतसंजीवनी नामसुधामें है, वे उसका सेवन करेंगे । यह कस्तूरी है, इसके तिलभरका सेवन ही बड़े-से-बड़े रोगका निवर्तक है । कर्मकाण्डमें भी सबका तिरस्कार करके विश्वजित् किया जाता है । ज्योतिष्टोमका फल प्राप्त करनेके लिये दर्शपूर्णमासका अनुष्ठान होता है । बड़े धर्ममें जीवकी शक्ति काम करती है और छोटे-से काममें ईश्वरकी शक्ति । स्कन्दपुराणमें ऐसे वचन मिलते हैं कि 'जिस पापका प्रायश्चित्त अल्पसाध्य हो, उसका प्रायश्चित्त भी दुस्साध्य बताना चाहिये । इससे मनुष्य पाप करनेसे डरता है । हल्का-फुल्का प्रायश्चित्त नहीं बताना चाहिये; क्योंकि इससे बतानेवालेको पापकी प्राप्ति होती है ।' इसका अभिप्राय यह निकलता है कि दुस्साध्य प्रायश्चित्त भी एक विभीषिका है और लोगोंकी पाप-प्रवृत्ति रोकनेके लिये उनके निर्देशकी आवश्यकता है । पाप हो जानेपर तो भक्तिके अङ्गोंद्वारा ही उसका निवारण करना चाहिये । इसीसे शाण्डिल्यका वचन है—

'लघ्वपि महत्क्षेपकम्'० ।

वैसे तो सामान्यरूपसे पुराणोंमें अर्थवादकी कल्पना-को अनुचित बताया गया है । अर्थवाद माननेवालेके पुण्य भी अर्थवादमात्र रह जाते हैं और उन्हें नरककी प्राप्ति होती है । परंतु नामके सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि नाम-माहात्म्यको कभी अर्थवाद नहीं मानना चाहिये—

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु नाममाहात्म्यवाचिषु ।
येऽर्थवाद इति ब्रूयुर्न तेषां निरयक्षयः ॥

इससे अन्य विषयोंमें मीमांसाका द्वार खुला रहता है, पाण्डित्य भी चरितार्थ होता है और यह निष्कर्ष भी निकलता है कि अविरुद्ध अर्थका निरूपण करनेवाले इतिहास-पुराणको अप्रामाणिक नहीं मानना चाहिये । नाम-महिमाको अर्थवाद मानना नामापराध है, इससे नामका फल प्रतिबद्ध हो जाता है ।

नाम-महिमाको अर्थवाद माननेका क्या कारण है ? क्या नामकीर्तन, नामस्मरणादिकी विधि नहीं है ? या वह केवल किसी विधि-विधानका शेष ही है ? अथवा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसका तात्पर्य नामोच्चारणमें न होकर कहीं अन्यत्र है ? यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि सम्पूर्ण पापोंके नाशके लिये नामोच्चारणका स्पष्ट विधान प्राप्त होता है। जैसे ब्रह्महत्यासे संतरणके लिये अश्वमेधका विधान है, वैसे नामस्मरणका भी। यह दूसरी बात है कि अश्वमेध एक बार होकर समाप्त हो जायगा और नामस्मरण अन्तर्देशके सूक्ष्मतम प्रदेशमें प्रवेश करके ऐसा जम जायगा कि फिर मुक्तिपर्यन्त उस अन्तःकरणका परित्याग नहीं करेगा। इस प्रकार यदि द्रव्यादिकी दृष्टिसे अश्वमेध महान् होगा तो जीवके अन्तर्जीवनमें व्याप्त हो जानेके कारण नाम भी महान् हो जायगा। ऐसी स्थितिमें नाममाहात्म्यको अर्थवाद मानना सर्वथा अनुचित है।

यह कहना कि नामसंकीर्तनकी महिमा केवल कलियुगके लिये है—यह नामकी महिमाका यथार्थ कथन नहीं, निन्दा है। किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें यह कहना कि यह इसी गाँवमें या इसी समयमें अच्छी है, उसकी महिमाको संकुचित करना है। नाम-महिमाको हम इस रूपमें भी कह सकते हैं कि सत्ययुग-त्रेता आदिमें दोष कम हैं और वे ध्यान, योग एवं अर्चाके द्वारा दूर कर दिये जाते हैं, जब कि कलियुगमें दोष बड़े-बड़े हैं, अनेक हैं, गहराईमें घुसे हुए हैं, उनको दूर करनेके लिये स्वयं भगवान्ने ही नामावतार ग्रहण किया है। 'नाम' भगवान्के अनुग्रहका आविर्भाव है। यह रूपको प्रकट करता है। यह ध्यानको सहारा देता है, यज्ञको पूर्ण करता है और अर्चामें मन्त्र बनता है। वेदोक्त साधन होनेके कारण यह नित्य है और चारों युगोंमें अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखता है। न्यूनकी पूर्णता और छिद्रका समाधान नामसे ही सम्पन्न होता है।

लोकव्यवहारमें दो प्रकारके लोग देखनेमें आते हैं। कोई कठिन कर्तव्य पूर्ण करनेमें उत्साहसे प्रवृत्त होते हैं और कोई सुगमको पूर्ण करनेके लिये। कोई कठिन सुनकर डर जाते हैं, कोई सरल सुनकर उपेक्षा करते हैं। ऐसी स्थितिमें जिनकी रुचि सांवत्सरिक व्रत, कृच्छ्रचान्द्रायण आदिमें हो, प्रायश्चित्तके लिये उन्हें उन्हींका अनुष्ठान करना चाहिये। जिन लोगोंका नाममें विश्वास है, उन्हें नामजप आदि करना चाहिये। किसीकी रुचि महत्में होती है, किसीकी अल्पमें। भक्तिसिद्धान्त मीमांसकोंके विश्वास और अनुष्ठानपर कोई आक्षेप नहीं करता; परंतु वह जीवके पौरुषके सम्मुख भगवान्के अनुग्रहको महान् मानता है और नामाभाससे भी भगवान् प्रसन्न होकर जीवका कल्याण कर सकते हैं— इसका पूर्णतः प्रतिपादन करता है। अजामिलके प्रसङ्गमें एक टीकाकारने लिखा है कि 'गँवार वैद्य और मर्मज्ञ वैद्यमें जो अन्तर होता है, वही इस प्रसङ्गमें समझना चाहिये।'

१४–भक्तिके गुण

भक्तिमीमांसाका मत है कि भागवत मतमें 'भक्ति' ही परमपुरुषार्थ है, 'मोक्ष' परमपुरुषार्थ नहीं। इसके लिये भक्तिविषयक भिन्न-भिन्न सूत्रोंमें भक्तिको 'फलरूप' अथवा 'स्वयंफलरूप' कहा गया है।

'भक्तिरसामृतसिन्धु' में श्रीमद्भागवतके इस श्लोकका अभिप्राय बतानेके लिये कि 'भक्तजन भगवान्के देनेपर भी सालोक्यादि मुक्तियोंको स्वीकार नहीं करते' भक्तिका लक्षण इस प्रकार किया गया है।

(१) **क्लेशघ्नी**—भक्ति क्लेशका नाश करती है। क्लेश तीन प्रकारके होते हैं—पाप, पापके बीज और अविद्या। पाप दो प्रकारके होते हैं—अप्रारब्ध-पाप और प्रारब्ध-पाप। भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें कहा गया है कि 'जैसे प्रदीप्त अग्नि ईंधनको भस्म कर देती है, वैसे ही भगवद्विषयक भक्ति संचितादि पाप-समूहोंको सम्पूर्णतः भस्म कर देती है।' प्रारब्ध-पापके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्धमें यह कहा गया है कि 'जातितः श्वपच भी भगवन्नामके श्रवण-कीर्तनादिसे यज्ञके योग्य हो जाता है।' उपर्युक्त ग्रन्थकी 'दुर्गमसंगमनी' टीकामें स्पष्ट किया गया है कि 'भक्ति दुर्जातिप्रापक प्रारब्ध-पापका नाश करके यज्ञ-योग्य, जातिके कारणरूप पुण्यकी प्राप्ति करा देती है'। अप्रारब्धफल पाप तीन प्रकारके होते हैं—कूट, बीज और फलोन्मुख। वे सब भक्तिसे नष्ट हो जाते हैं—यह पद्मपुराणका वचन है। भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें यह आता है कि 'इन्द्रियोंके संयम और मनको निर्विषय बनानेसे ग्रन्थिभेद नहीं होता, परंतु भक्ति कर्माशय-ग्रन्थिका सर्वथा भेदन कर देती है।' इसका अर्थ है कि भक्तिमें अविद्याको नष्ट करनेकी भी सामर्थ्य है।

(२) शुभदा—भगवान्‌की भक्ति सर्वात्माकी सेवा है। चूँकि वे सर्वात्मा हैं, इसीसे उनकी भक्ति करनेसे सम्पूर्ण विश्वको तृप्त करनेका फल मिल जाता है। भक्तमें सारे सद्गुण निवास करते हैं। भक्तको लौकिक सुख, ब्रह्मलोकपर्यन्त पारलौकिक सुख और भागवत-सुखकी भी प्राप्ति होती है।

(३) मोक्षसुख छोटा है—हृदयमें भक्ति महारानीके किंचित् स्थिररूपमें विराजमान होते ही चारों पुरुषार्थ तृणवत् हो जाते हैं। मुक्ति आदि सिद्धियाँ और अद्भुत भुक्तियाँ भक्तिकी दासी हैं। अर्थरूप पुरुषार्थ बाह्य है, स्पष्टतः नश्वर। भोग श्रमसापेक्ष एवं वासनाके द्वारा बन्धनका हेतु है, धर्म क्रियाजन्य होनेके कारण अनन्तफलका हेतु नहीं है। मोक्ष तत्त्वज्ञानके द्वारा बाधित यथास्थितिसे उपलक्षित अपना आत्मा ही है। उसके साथ कोई प्राप्य-प्रापक भाव नहीं है। चाहे विश्व भासमान हो, चाहे न हो, वह बाधित होना चाहिये। आत्मा ही मोक्ष है। भक्तिसिद्धान्तमें बुद्धिरूप उपाधिका लय हो जानेपर स्वाभाविक परमेश्वरैक्य ही मोक्ष है; परंतु भक्ति बन्धन और मोक्ष दोनोंमें रहती है।

(४) भक्ति दुर्लभ है—दुर्लभता दो प्रकारकी है। (१) जीव यज्ञादि साधन-सहस्रसे भी अपने पौरुषके बलपर भक्तिको सुगम नहीं बना सकता। (२) स्वयं भगवान् भी भजन करनेवालोंको मुक्ति सुलभ कर देते हैं, परंतु भक्ति सबको नहीं देते। भागवतमें कहा है—

'मुक्तिं ददाति कर्हिचित् स्म न भक्तियोगम्।'

(५) भक्ति एक विशेष प्रकारका घनानन्द है—यहाँतक कहा गया है कि ब्रह्मानन्दको यदि परार्ध-गुणित कर दिया जाय, तो भी वह भक्तिसुखाम्भोधिके परमाणुकी भी तुलना नहीं कर सकेगा। ब्रह्मानन्द शान्त है और भागवतानन्द उल्लासात्मक। इसमें प्रेम-पिपासा और रसतृप्ति युगपत् निवास करते हैं। श्रीधर-स्वामीने कहा है कि 'कथामृत-समुद्रके विहारमें इतना परमानन्द है कि उसके सामने चतुर्वर्ग—धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष तृणके समान लगते हैं।'

(६) भक्ति श्रीकृष्णको आकृष्ट करती है—सगुण-ब्रह्मविद्याकी यह और असाधारण विशेषता है कि यह भगवान्‌को प्रियतमसे प्रेमी बना देती है। इतना आकर्षण धर्मानुष्ठान, विवेक, योगाभ्यास, विद्या, तपस्या एवं त्यागमें नहीं है; क्योंकि भक्ति केवल श्रम, जानकारी अथवा स्पर्शमात्र नहीं है। यह प्रेम है, आकर्षण है, हृदयकी एकता है। इसमें स्वयं भगवान् भक्तसे आनन्द लेते हैं। वे पाण्डवोंके घर बिना बुलाये जाते और रहते हैं। यशोदा-नन्दकी गोदमें सिर रखकर रोते हैं। सुदामाके आलिङ्गनसे इतना आनन्द पाते हैं कि उनके नेत्रोंसे अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। रुक्मिणीके लिये इतने बेचैन होते हैं कि उन्हें रात्रिमें निद्रा नहीं आती। यशोदाके हाथों बँध जाते हैं। गोपियोंके प्रति अपनेको निछावर कर देते हैं। 'कहीं मेरे कठोर स्पर्शसे राधारानीके अङ्गमें खरोंच न लग जाय' इस डरसे उन्हें मनके हाथोंसे छूनेमें भी डरते हैं। इस प्रकार भगवान्‌को वशमें करनेकी सामर्थ्य भक्तिमें है।

'भक्तेः फलमीश्वरवशीकारः।'

(समाप्त)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गीताका भक्तियोग

(लेखक—पूज्य स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क पृष्ठ ९७९ से आगे]

सम्बन्ध

(पाँचवें श्लोकके ऊपर दिया हुआ है)

श्लोक

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥

भावार्थ

निर्गुण-उपासकोंसे भिन्न अपने अनन्यप्रेमी सगुण-उपासकोंके विषयमें भगवान्‌ने यहाँपर तीन बातें बतलायी हैं—

(१) मेरी प्राप्तिका उद्देश्य रहनेसे उनके सभी कर्म सर्वथा मेरे ही समर्पित होते हैं ।

(२) मुझको ही परम श्रेष्ठ और परम प्राप्य मानकर वे मेरे ही परायण रहते हैं ।

(३) मेरे सिवा और किसी वस्तुमें आसक्ति न रहनेके कारण नित्य-निरन्तर मेरा ही ध्यान-चिन्तन करते हुए वे मेरी ही उपासना करते हैं ।

ग्यारहवें अध्यायके ५५वें श्लोकमें भगवान्‌ने अनन्य भक्तके लक्षणोंमें तीन विधेयात्मक ('मत्कर्मकृत्', 'मत्परमः' और 'मद्भक्तः') और दो निषेधात्मक ('सङ्गवर्जितः' और 'निर्वैरः') पद दिये हैं । उन्हीं पदोंका अनुवाद यहाँ इस प्रकारसे हुआ है—

(१) 'सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य' पदोंसे 'मत्कर्मकृत्'की ओर लक्ष्य है ।

(२) 'मत्पराः' पदसे 'मत्परमः' का संकेत है ।

(३) 'अनन्येनैव योगेन' पदसे 'मद्भक्तः'का लक्ष्य कराते हैं ।

(४) 'अनन्येनैव योगेन'का तात्पर्य यह है कि भगवान्‌में ही अनन्यतापूर्वक लगे रहनेसे उनकी और कहीं किंचिन्मात्र भी आसक्ति न रहनेके कारण वे 'सङ्गवर्जितः' हैं ।

(५) अन्यमें आसक्ति न रहनेके कारण उनके मनमें किसीके प्रति भी वैर, उत्तेजना और क्रोध आदिका भाव नहीं रह सकता, इसलिये 'निर्वैरः' पदका भाव भी इसके अन्तर्गत आ जाता है । परंतु भगवान्‌ने इसे स्पष्ट करनेके लिये १३वें श्लोकमें सिद्ध भक्तोंके लक्षणोंमें सबसे पहले 'अद्वेष्टा' पदका प्रयोग किया है ।

अन्वय

तु, ये, मत्पराः, सर्वाणि, कर्माणि, मयि, संन्यस्य,
माम्, एव, अनन्येन, योगेन, ध्यायन्तः, उपासते ॥ ६ ॥

तु (इसके विपरीत)

ये (जो)

'ये' पद यहाँ निर्गुण-उपासकोंके प्रकरणसे सगुण-उपासकोंके प्रकरणको अलग करनेके लिये आया है । ग्यारहवें अध्यायके ५५वें श्लोकमें और इसी अध्यायके २ रे श्लोकमें जिन उपासकोंका वर्णन हुआ है, उन्हीं उपासकोंका प्रकरण इस श्लोकसे प्रारम्भ करते हैं ।

मत्पराः (मेरे परायण हुए)

परायण होनेका अर्थ है—भगवान्‌को परम पूज्य और सर्वश्रेष्ठ समझकर अपने आपको भगवान्‌के समर्पित किये रहना । सर्वथा भगवान्‌के परायण होनेसे सगुण-उपासक अपने आपको भगवान्‌का यन्त्र समझता है और क्रियामात्रको भगवान्‌के द्वारा की हुई मानता है, फलतः वह कर्तृत्वाभिमानसे रहित हो जाता है ।

दूसरे अध्यायके ६१वें श्लोकमें, छठे अध्यायके १४वें श्लोकमें और अठारहवें अध्यायके ५७वें श्लोकमें 'मत्परः' पदसे, नवें अध्यायके ३४वें श्लोकमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मत्परायणः' पदसे तथा ग्यारहवें अध्यायके ५५वें श्लोकमें 'मत्परमः' पदसे 'मत्पराः' (मेरे परायण) पदका भाव ही बताया गया है।

सर्वाणि कर्माणि (सम्पूर्ण कर्मोंको)

यहाँपर 'कर्माणि' पद स्वयं ही बहुवचन होनेसे सम्पूर्ण कर्मोंका बोध कराता है, परंतु इसके साथ 'सर्वाणि' विशेषण देकर सभी लौकिक अर्थात् शारीरिक और आजीविकासम्बन्धी एवं पारलौकिक अर्थात् जप-ध्यान-सम्बन्धी सम्पूर्ण क्रियाओंका इसमें समाहार किया गया है।

नवें अध्यायके २७वें श्लोकमें वर्णित 'यदश्नासि' पदसे शरीर-निर्वाह और आजीविकासम्बन्धी सम्पूर्ण क्रियाएँ, 'यज्जुहोषि', 'ददासि यत्' और 'यत्तपस्यसि' पदोंसे यज्ञ, दान, तप आदि सम्पूर्ण वैदिक कर्म और 'यत्करोषि' पदके अन्तर्गत अन्य सभी तरहकी क्रियाएँ आ जाती हैं। अतः मन, वाणी और शरीरसे जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, उन सभीका इस पदमें अन्तर्भाव हो जाता है।

मयि संन्यस्य (मुझमें अर्पण करके)

इस पदसे भगवान् क्रियाओंका स्वरूपसे त्याग करनेकी बात नहीं कहते; क्योंकि पहली बात तो यह है कि स्वरूपसे कर्मोंका त्याग सम्भव ही नहीं है (गीता ३। ५; १८। ११)। दूसरी बात यह है कि सगुण-उपासक क्रियाओंको यदि प्रमादसे छोड़ भी देगा तो वह त्याग मोहपूर्वक किया गया होनेसे 'तामस त्याग' होगा (गीता १८। ७) और यदि दुःखरूप समझकर शारीरिक क्लेशके भयसे उन्हें वह छोड़ता है तो वह 'राजस त्याग' होगा। अतः ऐसा करनेसे कर्मोंसे सम्बन्ध छूटेगा नहीं। इसलिये कर्मोंसे मुक्त होनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य कर्मोंमें ममता, आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करे; क्योंकि ममता, आसक्ति और फलेच्छा आदिके द्वारा क्रियाके साथ जो सम्बन्ध जोड़ा जाता है, वही बाँधनेवाला है, कर्म स्वरूपतः कभी मनुष्योंको बाँधते नहीं। साधकका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति होनेसे उसमें पदार्थोंकी इच्छा नहीं रहती और अपने आपको भगवान्का समझनेसे उसकी कर्मोंसे ममता हटकर भगवान्में हो जाती है। कर्ताके स्वयं अर्पित होनेसे उसके सम्पूर्ण कर्म भगवदर्पित होते हैं। उसी अर्पणका 'सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः' पदोंसे संकेत है।

तीसरे अध्यायके ३०वें श्लोकमें 'अध्यात्मचेतसा मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य' पदोंसे, पाँचवें अध्यायके १०वें श्लोकमें 'ब्रह्मण्याधाय कर्माणि' पदोंसे, नवें अध्यायके २८ वें श्लोकमें 'संन्यासयोगयुक्तात्मा' पदसे, ग्यारहवें अध्यायके ५५वें श्लोकमें 'मत्कर्मकृत्' पदसे, इसी अध्यायके १० वें श्लोकमें 'मत्कर्मपरमो भव' एवं 'मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्' पदोंसे, अठारहवें अध्यायके ५७वें श्लोकमें 'चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य' पदोंसे और ६६वें श्लोकमें 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' पदोंमेंसे किसी भी पदमें भगवान्ने स्वरूपसे कर्मोंके त्यागकी बात नहीं कही है, अपितु कहीं 'अध्यात्म-चेतसा'से कर्मोंका अर्पण कहा है, कहीं 'ब्रह्म'में अर्पण कहा है और कहीं 'चेतसा' (चित्त)से कर्मोंका अर्पण कहा है। इसका तात्पर्य चित्तसे भगवान्को कर्म अर्पण करना ही है। साधककी मन-बुद्धिमें यह निश्चय है कि 'मैं भगवान्के सर्वथा अर्पित हूँ और मेरे परम प्राप्य भगवान् ही हैं।' ऐसे मन-बुद्धिसे युक्त साधक जो कर्म करता है, उसके कर्म वास्तवमें भगवदर्पित हैं।

टिप्पणी

मुझमें अर्पणके कई भेद हैं, जिनको 'मदर्पण', 'मदर्थकर्म' और 'मत्कर्मकृत्' के नामोंसे कहा गया है।

(१) 'मदर्पण कर्म' उन कर्मोंको कहते हैं, जिन कर्मोंका उद्देश्य पहले कुछ और हो, किंतु क्रिया करते समय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या क्रियाके पश्चात् उन्हें भगवान्‌के अर्पण कर दिया जाय। जैसे ध्रुवकी तपस्या प्रारम्भ तो हुई राज्यकी इच्छाको लेकर, परंतु उन्होंने तपस्याकालमें ही तपस्यारूपी कर्मको भगवान्‌के अर्पण कर दिया। अतः भगवदर्पित होनेके कारण उस तपस्याके फलस्वरूप उसे भगवत्प्राप्ति हुई।

(२) 'मदर्थ कर्म' वे कर्म हैं, जो प्रारम्भसे ही भगवान्‌के लिये किये जायँ या भगवत्सेवारूप हों। भगवत्प्राप्तिके लिये कर्म करना, भगवान्‌की आज्ञा मानकर कर्म करना और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये कर्म करना—ये सभी भगवदर्थ कर्म हैं।

(३) 'मत्कर्मकृत्'में उन कर्मोंका संकेत है, जो स्वयं भगवान्‌के परायण होकर मात्र भगवान्‌के लिये किये जायँ।

भक्तियोगी जैसे अपनी क्रियाओंको भगवान्‌के अर्पण करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जाता है, वैसे ही ज्ञानयोगी क्रियाओंको प्रकृतिमें होती हुई समझता है और अपनेको उनसे सर्वथा असङ्ग और निर्लिप्त समझता है। गीताजीमें इस बातको अनेक प्रकारसे कहा गया है। यथा—

(१) इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके अर्थोंमें बरत रही हैं (५।९)।

(२) प्रकृतिके कार्यरूप इन्द्रियाँ प्रकृतिके कार्यरूप इन्द्रियोंके विषयोंमें बरत रही हैं (३।२७; १३।२९)।

(३) 'नवद्वारे पुरे संन्यस्य—नौ द्वारोंवाले प्रकृतिके कार्यरूप शरीरमें न्यास करके' (५।१३)।

(४) 'स्वभावस्तु प्रवर्तते—प्रकृति ही सब कुछ करती है' (५।१४)

(५) अठारहवें अध्यायके १४वें और १५वें श्लोकोंमें कर्मोंके सम्पादनमें पाँच हेतु गिनाये गये। वहाँपर एक हेतु 'कर्ता' भी है।

यदि ज्ञानयोगी अपनेको सर्वथा असङ्ग और निर्लेप मानकर उन क्रियाओंका कर्त्ता नहीं बनता तो उस स्थितिमें क्रियाओंके होनेमें पाँच हेतु गिनाये गये हैं।

पाँचों ही प्रकारसे कर्मके होनेमें मूल बात यह है कि ज्ञानयोगी प्रकृतिको कर्त्ता मानता है और स्वयं कर्मोंसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है।

कर्मयोगी दो प्रकारके होते हैं—(१) भक्तिप्रधान कर्मयोगी और (२) कर्मप्रधान कर्मयोगी।

(१) भक्तिप्रधान कर्मयोगीका कर्तापन बदलकर भगवान्‌में ही लीन हो जायगा अर्थात् वह भगवान्‌को ही कर्ता मानेगा और स्वयं निमित्तमात्र ही रहेगा।

(२) कर्मप्रधान कर्मयोगी पदार्थ, शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदिसे सेवा करते-करते जब 'अहं'को भी सेवामें लगा देगा, तब जो तत्त्व है, वह ज्यों-का-त्यों रह जायगा।

अतः उपर्युक्त तीनों ही मार्गोंसे सिद्धि प्राप्त करनेवाले पुरुषमें कर्मोंसे किंचिन्मात्र भी सम्बन्ध नहीं रहेगा; क्योंकि उसमें न तो फलेच्छा और कर्तृत्वाभिमान हैं न पदार्थ, शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियोंमें ममता ही। फलतः वह कर्मोंको अपने मानता नहीं अर्थात् कर्मोंमें भी उसकी ममता नहीं रहती। इस प्रकार कर्मोंसे सर्वथा मुक्त हो जाना ही वास्तविक समर्पण है। सिद्ध पुरुषोंकी क्रियाओंका स्वतः ही समर्पण होता है और साधक पूर्ण समर्पणका उद्देश्य रखकर वैसे ही कर्म करनेकी चेष्टा करता है।

माम् (मुझ सगुणरूप परमेश्वरको)

एव (ही)

अनन्येन योगेन (अनन्ययोगसे अर्थात् अनन्यभक्तिसे)

'अनन्येन योगेन' इन पदोंमें इष्टविषयक और उपाय-सम्बन्धी, दोनों प्रकारकी अनन्यताका संकेत है अर्थात् उसके इष्टदेव भी भगवान् हैं, उनके सिवा और कोई भजनेयोग्य उसकी दृष्टिमें है ही नहीं और इष्टकी प्राप्तिके लिये आश्रय भी उन्हींका है।

आठवें अध्यायके १४वें श्लोकमें 'अनन्यचेताः' पदसे और २२वें श्लोकमें 'अनन्यया' पदसे, नवें अध्यायके १३वें श्लोकमें 'अनन्यमनसः' पदसे और ३०वें श्लोकमें 'अनन्यभाक्' पदसे, तेरहवें अध्यायके १०वें श्लोकमें 'अनन्ययोगेन' पदसे एवं चौदहवें अध्यायके २६वें श्लोकमें 'अव्यभिचारेण भक्तियोगेन' पदोंसे अनन्य भक्तिका ही लक्ष्य है।

ध्यायन्तः (निरन्तर चिन्तन करते हुए)

उपासते (भजते हैं)

सम्बन्ध—

(पाँचवें श्लोकके ऊपर दिया हुआ है।)

श्लोक

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥ ७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावार्थ

इसी अध्यायके छठे श्लोकमें 'सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य' (सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके), 'मत्पराः' (मेरे परायण होकर) और 'अनन्येन योगेन मां ध्यायन्तः' (अनन्ययोगसे मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए) पदोंसे भगवान् अपने प्रेमी सगुणोपासकोंके लक्षण बतला चुके हैं। उन सभी लक्षणोंका समाहार यहाँ एक पद 'मय्यावेशितचेतसाम्—मुझमें चित्त लगानेवाले'से किया गया है। ग्यारहवें अध्यायके ५५वें श्लोकमें ऐसे भक्तको 'मामेति' पदसे अपनी प्राप्ति बतलायी गयी। यहाँ भगवान् उनके लिये एक विशेष बात कहते हैं कि 'भक्तोंको विघ्न-बाधाओंसे बचाकर उनका मैं स्वयं अतिशीघ्र मृत्युमय संसारसमुद्रसे उद्धार कर देता हूँ।'

अन्वय

पार्थ, तेषाम्, मयि, आवेशितचेतसाम्, अहम्, नचिरात्, मृत्युसंसारसागरात्, समुद्धर्ता, भवामि ॥७॥

पार्थ-(हे अर्जुन)

पृथाका पुत्र होनेसे अर्जुनका एक नाम 'पार्थ' भी है।

टिप्पणी

अर्जुनका 'पार्थ' सम्बोधन भगवान्के साथ प्रियता और घनिष्ठ सम्बन्धका द्योतक है। गीताजीमें भगवान्के वचनोंमें ३८ बार 'पार्थ' सम्बोधनका प्रयोग हुआ है। यह अन्य सभी सम्बोधनोंकी अपेक्षा अधिक है। इसके बाद सबसे अधिक प्रयोग 'कौन्तेय' सम्बोधनका हुआ है, जिसकी आवृत्ति २४ बार हुई है।

गीतामें अर्जुनके प्रति भगवान्को जब कोई विशेष बात कहनी होती है या आश्वासन देना होता है या उनके प्रति भगवान्का प्रेम विशेषरूपमें उमड़ता है, तब भगवान् उन्हें 'पार्थ' कहकर पुकारते हैं। इस सम्बोधनके प्रयोगद्वारा मानो वे यह याद दिलाते हैं, 'तुम मेरे बुआके लड़के ही नहीं हो, अपितु मेरे प्यारे भक्त और सखा भी हो। (गीता ४। ३) अतः तुम्हें मैं विशेष गुह्यतम बातें बतलाता हूँ और जो कुछ भी कहता हूँ, तुम्हारे हितके लिये कहता हूँ और सत्य कहता हूँ।'

'पार्थ' सम्बोधनसे भगवान् विशेषरूपसे यहाँ इस श्लोकमें यह लक्ष्य कराते हैं कि 'अपने प्रेमी भक्तोंका मैं स्वयं तत्काल उद्धार कर देता हूँ।' यही नहीं, अपने भक्तका उद्धार करके भगवान् अति प्रसन्न होते हैं।

जैसे भगवान्को 'पार्थ' सम्बोधन बड़ा प्रिय था, वैसे ही अर्जुनको 'कृष्ण' नाम बड़ा प्रिय था। अर्जुनने गीताजीमें ९ बार भगवान्को 'कृष्ण' नामसे सम्बोधित किया है। अन्य सभी नामोंकी अपेक्षा भगवान्के इस नामका प्रयोग गीतामें सबसे अधिक हुआ है।

गीताजीके निम्नाङ्कित श्लोकोंमें 'पार्थ' सम्बोधन आया है और वहाँ वह क्या विशेषता रखता है—इसका अब दिग्दर्शन कराया जाता है—

अध्याय-श्लोक	विशेषता
१। २५	अर्जुनके अन्तःकरणमें अपने आत्मीय जनोंके प्रति जो मोह विद्यमान था, उसको जाग्रत् करते हुए पहले-पहल भगवान्ने अर्जुनको 'पार्थ' कहकर पुकारा है।
२। ३	पृथाके संदेशकी स्मृति दिलाकर अर्जुनके अंदर क्षत्रियोचित वीरताका भाव जाग्रत् करनेके लिये।
२। २१	आत्माके नित्य और अविनाशी स्वरूपको लक्ष्य करानेके लिये।
२। ३२	कर्तव्यकी स्मृति दिलानेके लिये।
२। ३९	कर्मयोगके साधनकी ओर लक्ष्य करानेके लिये।
२। ४२	कर्मयोगमें खास बाधा सकाम भावकी है, उसे हटानेके उद्देश्यसे उसकी हानियोंकी ओर भगवान् अर्जुनका ध्यान दिलाते हैं।
२। ५५	निष्काम भावसे बुद्धि स्थिर हो जाती है—इसकी ओर लक्ष्य करानेके लिये।
२। ७२	निष्काम भावसे युक्त साधककी ब्रह्ममें ही स्थिति होती है, यह बतलानेके लिये।
३। १६	अपने कर्तव्यका पालन न करनेमें कितना दोष है, इस ओर लक्ष्य करानेके लिये।
३। २२	अपना उदाहरण देकर भगवान् अन्वयमुखसे कर्तव्यपालनकी आवश्यकताकी ओर ध्यान दिलाते हैं।
३। २३	विहित कर्मोंका पालन न करनेसे कितनी हानि होती है, इस ओर लक्ष्य करानेके लिये।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

४ । ११ अपने स्वभावका रहस्य बतलानेके लिये ।

४ । ३३ तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जानेपर कुछ भी करना, पाना और जानना शेष नहीं रहता, इस महत्त्व-पूर्ण स्थितिकी ओर ध्यान दिलानेके लिये ।

६ । ४० अत्यधिक घबराये हुए अर्जुनको आश्वासन देते हुए एवं बड़े प्यारसे धीरज बँधाते हुए भगवान् उन्हें 'पार्थ' और 'तात' कहकर पुकारते हैं । 'तात' सम्बोधन गीताजीमें केवल इसी जगह आया है ।

७ । १ समग्ररूपकी विशेषता कृपापूर्वक बिना पूछे ही बतलानेके लिये ।

७ । १० 'उत्पत्ति-विनाशरहित मैं ही सब प्राणियोंका साक्षात् कारणरूपी बीज हूँ'—यह बात बतलाने-के लिये ।

अर्जुनके प्रश्नपर आठवाँ अध्याय प्रारम्भ हुआ । नहीं तो भगवान् अपना ओरसे नवाँ अध्याय ही प्रारम्भ करते । अन्तकालीन गतिके विषयमें अर्जुनका प्रश्न रहा, अतः उसे विशेषतासे ध्यान देकर सुननेके लिये इस अध्यायमें पाँच बार 'पार्थ' सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है ।

८ । ८ अन्तकालीन गति भगवान्में ही हो—इस ओर लक्ष्य करानेके लिये ।

८ । १४ अपने अनन्य प्रेमी भक्तोंके लिये अपनेको सुलभ बतलानेके लिये । 'सुलभ' शब्द गीताजीमें एक ही बार आया है ।

८ । १९ जबतक भगवत्प्राप्ति नहीं होगी, तबतक जन्म-मरणरूपी बन्धन रहेगा ही—इस बातकी ओर लक्ष्य करानेके लिये ।

८ । २२ जन्म-मरणरूपी बन्धनसे छूटनेके लिये अनन्य भक्ति ही सरल उपाय है—यह बतलानेके लिये ।

८ । २७ शुक्ल और कृष्ण मार्गोंको जाननेसे निष्कामभाव-की प्राप्ति सहज ही हो सकती है—यह बतलानेके लिये ।

९ । १३ साधकोंके लिये दैवी सम्पत्तिकी आवश्यकता दिखलानेके लिये ।

९ । ३२ अपनी शरणागतवत्सलता प्रकट करनेके लिये—कोई भी कैसा ही पापी क्यों न हो, बिना किसी जाति-आश्रमके भेदसे मेरी शरण होनेपर उसे मेरी प्राप्ति हो जायगी, यह बतलानेके लिये ।

१० । २४ संसारसे उद्धार करनेवाले गुरु ही होते हैं । बृहस्पतिजी सबसे श्रेष्ठ गुरु हैं—इसलिये संसारका बन्धन छुड़ाकर उद्धार करानेवाली मेरी विभूति, मेरे ही स्वरूप हैं—यह बतलानेके लिये ।

११ । ५ अर्जुनमें कृतज्ञता, विनम्रता और निरभिमानता आदि गुणोंको देखकर भगवान्का कृपास्रोत उनकी ओर उमड़ पड़ा, अतः इस एकादश अध्यायमें वर्णित अपने सारे अनन्त रूपके प्रभाव और ऐश्वर्यका दर्शन उन्हें कराते हैं ।

१२ । ७ का भाव ऊपर लिखा जा चुका है ।

१६ । ४ संक्षेपसे आसुरी सम्पत्तिका वर्णन करते हुए उससे सावधान करनेके लिये ।

१६ । ६ विस्तारसे आसुरी सम्पदाका रूप बतानेके लिये; क्योंकि साधकके लिये आसुरी सम्पदाका त्याग अत्यन्त आवश्यक है ।

१७ । २६ अर्जुनको आसुरी सम्पदासे दूर रखकर सत्की ओर लक्ष्य करानेके लिये—सत् (परमात्मा) की ओर चलनेसे सभी कर्म सत्कर्म और सभी भाव सद्भाव हो जाते हैं, यह बतलानेके लिये ।

१७ । २८ श्रद्धासहित कर्म करना ही दैवी सम्पदा है, इस ओर लक्ष्य करानेके लिये ।

गीताके अठारहवें अध्यायमें पूर्व अध्यायोंके सभी उपदेशोंका सार होनेसे भगवान्के द्वारा ८ बार 'पार्थ' सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है ।

१८ । ६ कर्मयोगके विषयमें अपना निश्चित किया हुआ उत्तम मत बतलानेके लिये ।

जितने काम होते हैं, बुद्धिके प्रकाशसे ही होते हैं, अतः साधकको चाहिये कि हर समय अपनी बुद्धिको सात्त्विक ही

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रखनेका प्रयास रखे, यह बतलानेके लिये।

१८ । ३० सात्त्विक बुद्धि धारण करनेके लिये।

१८ । ३१ राजसी बुद्धिका त्याग करनेके लिये।

१८ । ३२ तामसी बुद्धिका त्याग करनेके लिये।

सात्त्विक धृति साधकके लिये विशेष आवश्यक है; अतः साधकको चाहिये कि हर समय सात्त्विक धृति धारण करनेका प्रयास करे।

१८ । ३३ सात्त्विक धृति धारण करानेके लिये—यह समझानेके लिये।

१८ । ३४ राजसी धृतिका त्याग करानेके लिये।

१८ । ३५ तामसी धृतिका त्याग करनेके लिये।

१८ । ७२ उपदेशके अन्तिम श्लोकमें 'पार्थ' सम्बोधन देकर उसकी स्थिति जाननेके लिये प्रश्न करते हैं कि तुमने मेरे उपदेशको ध्यानपूर्वक सुना कि नहीं ? यदि मेरे उपदेशको ध्यानपूर्वक सुना होगा तो तुम्हारा मोह अवश्य ही नष्ट हो जाना चाहिये।

तेषाम् मयि आवेशितचेतसाम् (उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका)

'जिन साधकोंका लक्ष्य—उद्देश्य—ध्येय भगवान् ही बन गये हैं, जिन्होंने भगवान्में ही अनन्य प्रेमद्वारा अपने चित्तको लगा दिया है, भगवान्को ही सर्वश्रेष्ठ समझकर अपनी बुद्धिको भी लगा दिया है—इस प्रकार जो मन-बुद्धिको भगवान्में अर्पण करके स्वयं भगवान्में ही लग गये हैं, उनके लिये यह पद आया है।

अहम् (मैं)

नचिरात् (शीघ्र ही)

मृत्युसंसारसागरात् (मृत्युरूप संसार-समुद्रसे)

जैसे सागरमें जल रहता है, वैसे ही संसारमें नाश होनेवाले प्राणी-पदार्थ ही रहते हैं, कोई भी प्राणी-पदार्थ क्षणमात्रके लिये भी स्थिर नहीं है, इसलिये संसार-सागरको 'मृत्यु-संसार-सागर' कहा गया है।

मनुष्यमें स्वभावतः अनुकूल-प्रतिकूल—दो-दो वृत्तियाँ रहती हैं। संसारकी घटना, स्थिति तथा प्राणी-पदार्थोंमें अनुकूल-प्रतिकूल वृत्ति राग-द्वेष उत्पन्नकर मनुष्यको संसारसे बाँध देती है (गीता ७ । २७)। यहाँतक देखा जाता है कि साधक भी सम्प्रदाय-विशेष और संतविशेषमें अनुकूल-प्रतिकूल भावना करके राग-द्वेषके शिकार बन जाते हैं, जिससे वे संसार-समुद्रसे जल्दी पार नहीं हो पाते। गीताजीमें भगवान्ने स्थान-स्थानपर इन द्वन्द्वोंसे (अनुकूल-प्रतिकूल भावनासे) मुक्त होनेपर ही जोर दिया है—जैसे 'निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो' (५ । ३); 'ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः' (७ । २८); 'द्वन्द्वैर्विमुक्ताः' (१५ । ५); 'न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते' (१८ । १०); 'रागद्वेषौ व्युदस्य च' (१८ । ५१)। इसलिये यदि साधक भक्त अपनी सारी अनुकूलता परमात्मामें कर ले—अर्थात् एकमात्र भगवान्से ही अनन्य प्रेमका सम्बन्ध जोड़ ले एवं सारी प्रतिकूलता संसारमें कर ले अर्थात् संसारसे सर्वथा विमुख हो जाय, तो वह इस संसार-बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाय। अनुकूल-प्रतिकूल—ये दो वृत्तियाँ रखना ही संसारमें बँधना है।

जीवमें प्रकृति और परमात्मा दोनोंका ही अंश है। जड प्रकृति और चेतन परमात्माके सम्बन्धसे ही जीवमें 'अहं' अर्थात् 'मैं'की स्फुरणा होती है। इस 'मैं'का सम्बन्ध जीवने भूलसे शरीरके साथ इतनी घनिष्ठतासे जोड़ लिया कि वह अपने आपको—'शरीर मैं हूँ'—इस प्रकार मानने लग गया। शरीरमें अहंता और शरीरसे सम्बन्धित प्राणी-पदार्थोंमें ममता करके संसारमें बँध गया। प्रकृतिके कार्य शरीर-संसारादिमें किसी प्रकारका भी सम्बन्ध जोड़ना जन्म-मरणका हेतु है (गीता १३ । २१)। यदि साधक ठीक विचारपूर्वक 'मैं' का आधार समझ ले तो संसारसे मुक्त होकर कृतकृत्य हो जाय। 'मैं'का मूल आधार परमात्मा है, जो नित्य और चेतन है। जीव परमात्माका अंश होनेके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण परमात्मासे अभिन्न है। शरीरके साथ 'मैं'का सम्बन्ध जोड़ लेनेसे जीवको परमात्माके साथ अपनी अभिन्नताकी विस्मृति हो गयी है—इस विस्मृतिको हटाकर वह परमात्मामें अपनी स्वतःसिद्ध अभिन्न स्थिति-का अनुभव कर ले और जड-नाशवान् प्रकृति और प्रकृतिके कार्य शरीर एवं संसारसे (जिसके साथ 'मैं' का सम्बन्ध कभी हुआ ही नहीं—केवल भूलसे ही माना गया है) जोड़े हुए सम्बन्धको छोड़ दे तो वह इस मृत्यु-संसार-सागरसे सदाके लिये मुक्त हो जाय।

टिप्पणी

गीताजीके निम्नलिखित पदोंमें मृत्युसंसारसागरकी ओर ही लक्ष्य है—

दूसरे अध्यायके ३९वें श्लोकमें 'कर्मबन्धम्' पद जन्म-जन्मान्तरमें किये हुए शुभ-अशुभ कर्मोंके संचित संस्कार-समुदायका नाम है। जबतक कर्मोंका बन्धन है, तबतक मनुष्य आवागमन-चक्रसे नहीं छूट सकता, इसलिये संसारको 'कर्मबन्धम्' कहा गया है। तथा ४०वें श्लोकमें 'महतो भयात्' पद जन्म-मृत्युरूप महान् भयका बोधक होनेसे 'मृत्युसंसारसागर'के अर्थमें ही आया है और ५०वें श्लोकमें 'सुकृतदुष्कृते' पदसे, नवें अध्यायके २८वें श्लोकमें 'शुभाशुभफलैः कर्मबन्धनैः' पदोंसे एवं अठारहवें अध्यायके १२वें श्लोकमें 'अनिष्टमिष्टम्, मिश्रम्, फलम्' पदोंसे 'मृत्युसंसार-सागर'का ही लक्ष्य कराया गया है; क्योंकि वहीं गिरकर अर्थात् संसारमें जन्म लेकर ही जीव कर्म-समुदायके फलरूप पाप-पुण्योंको भोगता है। चौथे अध्यायके १६वें श्लोकमें तथा नवें अध्यायके पहले श्लोकमें 'अशुभात्' पद 'मृत्युसंसारसागर'के अर्थमें ही आया है; कारण, संसारका बन्धन ही अशुभ है। आठवें अध्यायके १५वें श्लोकमें 'दुःखालयम्-अशाश्वतम्' पदोंसे 'संसार'का ही बोध कराया गया है। जैसे औषधालयमें औषध ही मिलती है, वैसे ही संसारमें दुःख-ही-दुःखका अनुभव होता है, अतः यह 'दुःखालयम्' है तथा क्षणभङ्गुर होनेके कारण उसे 'अशाश्वतम्' कहा गया है। नवें अध्यायके ३३वें श्लोकमें 'अनित्यम्-असुखम्' पदोंसे भी 'संसार'का ही बोध कराया गया है—संसार सदा नित्य नहीं रहता, इसीलिये उसे 'अनित्यम्' कहा गया है। भोगोंमें सुखकी प्रतीति होते हुए भी वास्तवमें उनमें सुख नहीं है; अर्थात् संसारमें कहीं सुख है ही नहीं। अतः इसे 'असुखम्' कहा गया है।

समुद्धर्ता (उद्धार करनेवाला)

भगवान्का साधारण नियम है कि जो जिस भावसे उन्हें भजता है, उसी भावसे भगवान् उसे भजते हैं (४।११)। अतः वे कहते हैं—

'यद्यपि मैं सबमें समभावसे स्थित हूँ (९ । २९) तथापि जिनका उद्देश्य मैं हूँ, जो मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्म करते हैं और मेरे परायण हुए मेरा ही जप-ध्यान-चिन्तन आदि करते हैं, ऐसे भक्तोंका मैं सम्यक् प्रकारसे उद्धार करता हूँ।'

इस पदके अन्तर्गत भगवान्का यह भाव भी है कि 'वह मेरी कृपासे साधनकी सारी विघ्न-बाधाओंको पार करके मेरी कृपासे ही मेरी प्राप्ति कर लेता है (१८ । ५६—५८); साधनकी कमीको पूरी कराके उसे अपनी प्राप्ति करा देता हूँ (९ । २२); उन्हें अपने समग्ररूपको समझनेकी शक्ति देता हूँ (१०।१०); उनके अन्तःकरणमें स्थित हुआ मैं तत्त्वज्ञानसे उनके अज्ञानजनित अन्धकारका नाश कर देता हूँ (१०।११) और उनको सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर देता हूँ (१८ । ६६)।'

भवामि (होता हूँ)

(क्रमशः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस्तिकताकी आधार-शिलाएँ

महापतित भी भगवान्‌का प्यार पा सकता है।

यदि आप अशान्तिका अनुभव करते हों तो भगवान्‌की शरणमें जाइये। चाहे कोई अत्यन्त नीच, सर्वथा अधम, सबकी नजरसे गिरा हुआ—कैसा भी क्यों न हो, यदि वह सच्चे मनसे भगवान्‌की शरणमें चला जाय तो वे उसे तत्क्षण हृदयसे लगा लेते हैं। जो निरन्तर भजन करनेवाला है, उसे वे बहुत प्यार करते हैं—यह ठीक है; किंतु महापतित भी उनका प्यार पा सकता है। केवल नीयत होनी चाहिये प्यार पानेकी। एक बारके लिये सच्चे मनसे उनके सम्मुख होना चाहिये। आप भी हृदय खोलकर उनके सामने कहिये—'दयामय! मुझ-जैसे प्राणीको तो केवल अहैतुकी कृपासे ही अपनाना होगा।' यदि सचमुच इस प्रकारकी प्रार्थना आप हृदयसे करें तो फिर सब व्यवस्था अपने-आप बैठ जायगी। प्रार्थना हृदयसे नहीं होती, इसीलिये प्रभु भी सुनकर भी नहीं सुनते। किंतु जबतक हृदयसे न हो, तबतक केवल वाणीमात्रसे भी करें, करें अवश्य। वाणीमात्रकी प्रार्थना भी बहुत लाभदायक है।

× × ×

सब चिन्ता छोड़कर मनको प्रभुमय बना लीजिये।

जो श्वास बीत गये, वे लौटेंगे नहीं; उनका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग—जो होना था, वह तो हो गया। अब जितने बचे हैं, उनको बड़ी सावधानीसे भगवान्‌के भजन-स्मरणमें बितायें। सारा विवेक बटोरकर बार-बार यह निश्चय कीजिये—यहाँकी कोई चीज भी साथ नहीं जायगी। धन, परिवार, पुत्र, मान-प्रतिष्ठा—सब यहीं रह जायँगे और मन अच्छे-बुरे संस्कारोंको लेकर आपके साथ चलेगा। ऐसी दशामें जो सबसे अच्छी चीज हो, उसे ही उस मनमें भरिये। सबसे अच्छी वस्तु हैं—भगवान्! उनसे उत्तम और कुछ भी नहीं है; उन्हींको भरिये। सब चिन्ता छोड़कर मनको प्रभुमय बना दीजिये, बनानेकी चेष्टा कीजिये। स्वयं अनन्त आनन्दमें डूब जायँगे और जगत्‌को भी पावन कर दीजियेगा।

एक इत्र बेचनेवालेको लीजिये। वह जहाँ अपना इत्र बेचने बैठ जाता है, वहाँका वातावरण इत्रकी सुगन्धसे भर जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि उसके डिब्बेमें इत्र भरा हुआ है। किसीके न चाहनेपर भी सुगन्ध उसे मिलती है। इत्र बेचनेवाला भी यदि न चाहे, तो भी सुगन्ध लोगोंको मिलती ही है। इसी प्रकार यदि आप अन्तःकरणमें भगवान्‌को भर सकें, तो फिर स्वयं आनन्दमें निमग्न होकर सारे जगत्‌में जो भी आपके सम्पर्कमें आयँगे, उन्हें भी दिव्य आनन्दका दान करेंगे, तरण-तारण बन जायँगे।

मृत्युका ठिकाना नहीं। उसके पहले-पहले अपनी जानमें पूरी शक्ति लगानी चाहिये। फिर कृपामय प्रभु कमी पूरी करेंगे। अनन्त कृपा बरस रही है, उसे ग्रहण कीजिये। कृपाको आनेके लिये, अन्तःकरणमें प्रवेश करनेके लिये आप मार्ग दे दें, बस।

प्रतिकूल परिस्थितिमें भी भगवान्‌की दया देखिये।

जो हुआ, हो रहा है, होगा, वह सर्वथा मङ्गलमयके विधानके अनुसार होगा; सभी बातोंमें सर्वथा केवल मङ्गल-ही-मङ्गल भरा है। यह ठीक है कि हमलोगोंकी दृष्टि सीमित रहती है, अनुकूल परिस्थितिमें भगवान्‌का हाथ दीखता है; पर सच मानिये, भगवान्‌की जितनी दया अनुकूल परिस्थितिमें है, ठीक उतनी ही दया प्रतिकूल परिस्थितिमें है। जिस दिन मनुष्य अपने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आपको उनके चरणोंमें समर्पित कर देता है, उस दिन यह बात समझमें आती है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। उसके पहले शास्त्रके वचनोंपर, संतोंके अनुभूतियुक्त वचनोंपर विश्वास करके ऐसी भावना करनी पड़ती है। जितनी मात्रामें भावना दृढ़ होती है, उतनी ही मात्रामें दुःख भी कम हो जाता है। अवश्य ही भजन इस बातमें अत्यधिक, सबसे अधिक सहायक होता है। आप किसी संतसे मिलना चाहते हैं, पर नहीं मिल पाते—इस बातके अन्तरालमें भी बड़ा मङ्गल छिपा है। यह मानें और यह ठीक समझें कि जिस दिन भगवान् उन संतको आपसे मिलाना उचित समझेंगे, उस दिन अपने-आप बिना किसी चेष्टाके वे मिल जायँगे, अपने-आप वैसे संयोग बन जायँगे।

देखें, आगमें यह गुण होता है कि यदि गंदी-से-गंदी चीज भी उसमें डाल दें तो आग उसका गंदापन नष्ट करके उसे अपना स्वरूप देती है। आगकी यह शक्ति जहाँसे आती है, जो समस्त शक्तियोंका केन्द्र है, वह वस्तु हैं—भगवान्! बड़ी आसानीसे कृपामय सब मल नष्ट करके अपने प्यारे भक्तको अपने समान कर लेते हैं। उनमें तनिक भी भेद-भाव नहीं है। उनके लिये सब समान हैं। उनके सम्मुख जाने भरकी देर है। इसीलिये उनकी ओर मुँह करें, मुँह करनेकी चेष्टा करें, चाह करें। इसमें भी वे सहायता करेंगे।

किसी भी असत् कमाईको स्वीकार न कीजिये।

भजनके साथ-साथ यदि कई खास बातोंपर ध्यान दिया जाय तो बहुत शीघ्र भजनका प्रत्यक्ष फल सामने आने लगता है। उन्हींमें एक बात है—सात्त्विक पवित्र अन्नका भोजन, अर्थात् यह कि अन्न सात्त्विक हो तथा सात्त्विक विधिसे तैयार किया जाय। पर सबसे अधिक इस बातका विचार आवश्यक है कि अन्न सात्त्विक कमाईका है कि नहीं। यह बात साधारण जान पड़ती है; पर मनको दूषित बनानेके लिये यह कितनी जिम्मेवार है—इसका महाभारतकी एक कथासे पता चलता है। भीष्मपितामहके विषयमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने कहा था—'युधिष्ठिर! ज्ञानके सूर्य (भीष्मपितामहजी) अस्त होने जा रहे हैं; उनसे जो सीखना हो, सीख लो।' ऐसे भीष्मपितामहकी बुद्धि दूषित अन्न खानेसे बिगड़ गयी थी। कथा आती है कि भीष्मजी शरशय्यापर जब उपदेश कर रहे थे, तब द्रौपदी हँस पड़ी। भीष्मने पूछा—'बेटी! तू हँसी क्यों? तू पतिव्रता है, तुम्हारी-जैसी स्त्री अकारण नहीं हँस सकती।' द्रौपदीने कहा—'पितामह! मैं यह सोचकर हँसी कि आपका यह ज्ञान उस समय क्या हो गया था, जब मेरी साड़ी भरी सभामें खींची जा रही थी।' भीष्मने कहा—'तू ठीक कहती है, बेटी! बात यह है कि उस समय मैं पापात्मा दुर्योधनका अन्न खाता था, इसलिये मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गयी थी और मैं न्याय-अन्यायका विचार नहीं कर सका।' अस्तु, जब भीष्म-सरीखे महात्माकी बुद्धि बिगड़ सकती है, तब फिर हम-लोग तो कलियुगी महान् पामर प्राणी स्वभावसे ही हैं। इसलिये आप यदि इस विषयमें सावधान रहें तो बड़ी शान्ति मिलेगी। मरना है, शरीरसे वियोग होगा ही; और बस, उसी क्षण आपका अपने पुत्र, परिवार, स्त्री, परिजन-सबसे नाता टूट जायगा। साथ चलेंगे कर्मोंके संस्कार और कर्मोंके करते समय जो पाप-पुण्यका बोझा इकट्ठा हुआ है, वह। फिर बुद्धिमानी इसीमें है कि किसी भी असत् कमाईको स्वीकार न करें। परिवारके बहानेसे मन धोखा देता है, पर इसी धोखेसे अबतक संसारमें भटक रहे हैं। खूब सावधान होना चाहिये। यह ठीक है कि यदि आप ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए हैं तो अयाचित दान स्वीकार कर सकते हैं; पर मन बड़ा धोखेबाज है। इससे पद-पदपर सावधान रहना चाहिये, एक पैसा भी स्वीकार करनेमें पहले अवश्य विचार लें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्यका आश्रय लेनेसे यदि आपको प्रत्यक्षमें बहुत आर्थिक हानि हो और उससे पारिवारिक भरण-पोषणमें बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हो जाय, तो उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये । भरण-पोषणके लिये आपका ग्राममें जाकर मुट्ठी-मुट्ठी चावल माँगकर भिक्षावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करना, भिक्षा भी न मिलनेपर भूखों मर जाना अच्छा है पर उदर-भरणके लिये अथवा परिवारकी रक्षाके लिये किसी भी असत् कमाईको स्वीकार करना अच्छा नहीं । यह बात आजकल बहुत कठिन-सी प्रतीत होती है, वातावरणका असर सबके ऊपर कम-वेशी मात्रामें पड़ चुका है । इसलिये सत्यके लिये मरना बहुत कठिन बात जान पड़ सकती है, पर है यही असली मार्ग । इसीमें शान्ति है, इसीमें सुख है । इसके विपरीत चाहे कोई हो, यदि वह असत् मार्गका अवलम्बन करता है तो उसका वर्तमान जीवन भी दुःखसे बीतेगा और परलोक तो अन्धकारमय है ही । इसलिये प्रार्थना है, खूब सावधान रहें । प्रभुके मार्गकी ओर बढ़नेमें सत्यपूर्ण, सदाचारपूर्ण जीवन बड़ा सहायक होता है ।

गांधी-जीवन-सूत्र

[अस्तेय-अपरिग्रह-स्वेच्छा-दारिद्र्य]

(लेखक—श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

गांधीने अपने लिये, अपने आश्रमवासियोंके लिये, जो जीवन-सूत्र बनाये थे, उनमें अहिंसा और सत्यके बाद अस्तेयका नंबर आता था, फिर ब्रह्मचर्यका और तब अपरिग्रहका । योगशास्त्रमें भी अष्टाङ्गयोग-मार्गमें यमकी जो साधना है, उसमें ये पाँचों व्रत आते हैं । सभी धर्मग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न शब्दोंमें इन व्रतोंपर जोर दिया गया है । यों गांधीका यह मानना था कि सब व्रत सत्य और अहिंसाके अथवा सत्यके गर्भमें रहते हैं और वे इस तरह बताये जा सकते हैं—

सत्य अथवा सत्य-अहिंसा

अहिंसा

ब्रह्मचर्य अस्वाद अस्तेय अपरिग्रह अभय आदि

जितने बढ़ाये जायँ उतने ।

× × ×
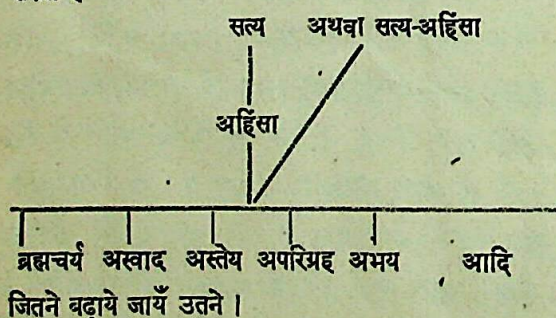
अस्तेयका सीधा-सा अर्थ है—चोरी न करना । स्थूल चोरी तो सभी जानते हैं । कोई रस्मासे सेंध मारकर चोरी करता है, कोई सेफ्टीरेजरसे जेब साफ करके । कोई जालसाजी, धोखेबाजीसे चोरी करता है, कोई छुरा, पिस्तौल और बंदूक दिखाकर परायी सम्पत्ति हथिया लेता है । चोरीके असंख्य प्रकार हैं, पर गांधीके लक्ष्योंमें तो स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म चोरी करनेका भी निषेध था । उसकी व्याख्या करते हुए वह लिखता है—

"चोरीका अपराध तो हम सब कम या ज्यादा मात्रामें, जानमें या अनजानमें करते ही हैं । दूसरेकी वस्तुको उसकी अनुमतिके बिना लेना तो चोरी है ही, मनुष्य अपनी कही जानेवाली चीज भी चुराता है । उदाहरणार्थ, किसी पिताका अपने बालकोंके जाने बिना, उन्हें मालूम न होने देनेकी इच्छासे चुपचाप किसी चीजका खाना । यह कहा जा सकता है कि आश्रमका वस्तु-भंडार हम सबका है, परंतु उसमेंसे जो चुपचाप गुडकी डली भी लेता है, वह चोर है । एक बालक दूसरे बालककी कलम लेकर 'मेरी' कहता है, तो वह चोरी करता है ।

"किसीके जानते हुए भी उसकी चीजको उसकी आज्ञाके बिना लेना चोरी है । यह समझकर कि वह किसीकी भी नहीं है, किसी चीजको अपने पास रख लेनेमें भी चोरी है । राहमें पड़ी हुई चीजके मालिक हम नहीं हैं, बल्कि उस प्रदेशका राजा या व्यवस्थापक है । आश्रमके नजदीक मिली कोई चीज

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आश्रमके मन्त्रीको सौंपनी चाहिये और यदि वह आश्रमकी नहीं है तो मन्त्री उसे सिपाहीको सौंप दे।

"इतनेतक तो समझना साधारणतः सहज ही है, परंतु अस्तेय इससे बहुत आगे जाता है। जिस चीजके लेनेकी हमें आवश्यकता न हो, उसे जिसके पास वह है, उसकी आज्ञा लेकर भी लेना चोरी है। ऐसी एक भी चीज नहीं लेनी चाहिये, जिसकी जरूरत न हो। संसारमें इस तरहकी अधिक-से-अधिक चोरी खाद्य-पदार्थोंकी होती है। मुझे अमुक फलकी आवश्यकता नहीं है, तो भी यदि मैं उसे लेता हूँ, तो वह चोरी है।

"उक्त समस्त चोरियोंको बाह्य या शारीरिक चोरी कह सकते हैं। इससे सूक्ष्म और आत्माको नीचे गिरानेवाली या पतित बनाये रखनेवाली चोरी मानसिक है। मनसे किसीकी चीजको पानेकी इच्छा करना या उसपर झूठी नजर डालना चोरी है। किसी उम्दा चीजको देखकर ललचा जाना मानसिक चोरी है। उपवासी दूसरेको खाते देख यदि मन-ही-मन स्वाद लेने लगता है तो चोरी करता है।

"अस्तेय-व्रतका पालक भविष्यमें प्राप्त होनेवाली चीजोंके लिये हवाई किले नहीं बाँधा करता। जैसे चीजकी, वैसे ही विचारकी भी चोरी होती है। किसी उत्तम विचारके अपने मनमें उत्पन्न न होनेपर भी जो अहंकारवश उसे अपना बताता है, वह विचारकी चोरी करता है।

"अतः अस्तेय-व्रतका पालन करनेवालेको बहुत नम्र, बहुत विचारशील, बहुत सावधान और बहुत सादगीसे रहना पड़ता है।"

× × ×

स्पष्ट है कि अस्तेय-व्रतकी साधना सरल नहीं है। स्थूल और बाह्य चोरीका त्याग करके जब हम मानसिक चोरीके त्यागकी दिशामें बढ़ेंगे, तब हमें लगेगा कि हम आवश्यकतासे अधिक रत्ती भर भी चीज न तो लें न मनमें उसकी कल्पना ही करें, न हम भविष्यके लिये हवाई किले बाँधें और न हम किसी वस्तुके लिये मनमें लालच करें।

यहींपर हम अपरिग्रहके क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं। सच पूछा जाय तो अस्तेय और अपरिग्रह एक ही सिक्केके दो बाजू हैं। अस्तेय-व्रतका साधक अपरिग्रही होगा ही। गांधी उसकी व्याख्या करते हुए कहता है—

"अपरिग्रहका सम्बन्ध अस्तेयसे है। जो चीज मूलमें चोरीकी नहीं है, पर अनावश्यक है, उसका संग्रह करनेसे वह चोरीकी चीजके समान हो जाती है। परिग्रहका अर्थ संचय या इकट्ठा करना है। सत्यशोधक अहिंसक परिग्रह नहीं कर सकता।

"आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसीका होता है, जो मन और कर्मसे दिगम्बर हो। अर्थात् वह पक्षीकी तरह गृहहीन, अन्नहीन और वस्त्रहीन रहकर विचरण करे। अन्नकी उसे रोज आवश्यकता होगी और भगवान् रोज उसे देंगे। पर इस अवधूत स्थितिको तो विरले ही पा सकते हैं। हम तो सामान्य कोटिके सत्याग्रही ठहरे, जिज्ञासु ठहरे। हम आदर्शको ध्यानमें रखकर नित्य अपने अपरिग्रहकी जाँच करते रहें और जैसे बने वैसे उसे करते रहें।

"केवल सत्यकी—आत्माकी दृष्टिसे विचारें तो शरीर भी परिग्रह है। भोगेच्छाके कारण हमने शरीरका आवरण खड़ा किया है और उसे टिकाये रहते हैं।

"वस्तुकी भाँति ही विचारका भी परिग्रह नहीं होना चाहिये। जो मनुष्य अपने दिमागमें निरर्थक ज्ञान ठूँस रखता है, वह परिग्रही है। जो विचार हमें ईश्वरसे विमुख रखते हैं या ईश्वरकी ओर नहीं ले जाते, वे सब परिग्रहमें शुमार होते हैं और इसलिये त्याज्य हैं।"

× × ×

भारतीय दर्शनमें अपरिग्रहकी उत्तम कोटियाँ दी गयी हैं। संन्यासी सारे परिग्रहोंका त्याग कर देता है। उसे समाजमें रहना पड़ता है, इसलिये वह केवल कौपीन धारण करता है, जैन दिगम्बर मुनि तो उसका भी त्याग कर देते हैं।

शंकराचार्यने अपने 'यति-पञ्चक'में कौपीनधारी संन्यासियोंकी कैसी सुन्दर व्याख्या की है—

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो
भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ १॥
मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः
पाणिद्वयं भोक्तुममन्त्रयन्तः।
कन्थामपि श्रियमिव कुत्सयन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ २॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः
कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ।
स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः
स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः ॥ ३-४ ॥

वेदान्त-वाक्योंमें ही वह सदा रमण करता है; भिक्षामें जो मिल जाता है, उसीमें संतुष्ट रहता है । उसे किसी बात-का शोक नहीं होता । करुणासे वह ओतप्रोत रहता है । वृक्षोंके मूलमें उसका डेरा रहता है । दोनों हाथ ही उसके पात्र होते हैं—करपात्री होता है वह । स्त्रीकी भाँति गुदड़ी-को भी वह हेय मानकर त्याग देता है । न उसे अन्तकी परवा होती है, न मध्यकी और न बाहरकी । किसीकी कोई याद नहीं । आत्मानन्दमें वह सदा मग्न रहता है । सारी इन्द्रियोंको वह भीतर-ही-भीतर शान्त किये रखता है ।

धन्य है ऐसा कौपीनधारी !

भर्तृहरि भी ऐसी ही अनुपम स्थितिकी आकाङ्क्षा करते हैं—

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥

एकाकी, निःस्पृह, शान्त, करपात्री और दिगम्बर कब हो पाऊँगा मैं, हे शम्भो ! तभी न मैं कर्मोंके प्रभावसे अपनेको मुक्त कर पाऊँगा ?

× × ×

ऐसे ही परमहंसोंकी स्थितिका वर्णन करते हुए नजीर कहता है—

कुछ जुल्म नहीं, कुछ जोर नहीं,
कुछ दाद नहीं, फरियाद नहीं ।
कुछ कैद नहीं, कुछ बंद नहीं,
कुछ जब्र नहीं, आजाद नहीं ॥
शागिर्द नहीं, उस्ताद नहीं,
वीरान नहीं, आबाद नहीं ।
हैं जितनी बातें दुनिया की,
सब भूल गये कुछ याद नहीं ॥
हर आन हँसी, हर आन खुशी,
हरवक्त अमीरी है, बाबा ।
जब आशिक मस्त फकीर हुए,
फिर क्या दिलगीरी है बाबा ॥

अपरिग्रहकी इस मस्तीका क्या कहना । आनन्द-ही-आनन्द चारों ओर । मानव इसी आनन्द-सागरमें आठ पहर, चौसठ घड़ी डूबा रहता है ।

× × ×

कोई चिन्ता नहीं, कोई स्पृहा नहीं । कुछ लेना नहीं, कुछ देना नहीं । जो कुछ मिले सो खाना; दाताका नाम जपना ! औलियोंकी, संतोंकी, मस्तोंकी यही स्थिति रहती है ।

पर हम तो ठहरे दुनियादार आदमी । हम क्या करें ?

गांधीने इसी प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा है कि 'इसके लिये हम दिन-दिन अपना परिग्रह घटाते चलें ।'

कैसे ?

कोचरब आश्रमके संस्मरण लिखते हुए प्रभुदास भाई गांधी कहते हैं—

"एक दिन अपरिग्रहके सम्बन्धमें समझाते हुए गांधीने कहा—'अपरिग्रहका व्रत सत्य और अहिंसाके व्रतसे कम महत्त्वका नहीं है । अपरिग्रहका अर्थ है—अपने पास सामान कम-से-कम रखना । जिन वस्तुओंके विना हमारा काम चल सकता है, उन वस्तुओंको हमें बटोरना नहीं चाहिये । अगर हमारा काम एक कुर्सीसे चल सकता है तो दूसरी कुर्सी हमें अपने पास नहीं रखनी चाहिये । छोटी कुर्सीसे चलता हो तो बड़ी कुर्सी नहीं लेनी चाहिये । यहाँ तो हमने कुर्सी रखी ही नहीं । नीचे ही बैठते हैं । बिछानेके लिये न जाजम रखी न गलीचा । काम करनेके लिये मेज चाहिये । छोटी-सी मेज बनानेकी बात मैंने मगनलालसे कही है । मंगलदास सेठने कहा है कि वे लकड़ी यहाँ मेज देंगे और हमलोग अपने हाथसे उस लकड़ीको चीरकर मेज बनायेंगे । हमारे साथ मिस्टर कैलेनबेकका सामान भी दक्षिण अफ्रीकासे आया है । उसमें तुमलोगोंने देखा होगा कि उनके चश्मेके बहुत सारे काँच रखे हैं । एक या दो चश्मेसे उनका काम नहीं चलता । उसी तरह सात दिनके लिये अलग-अलग उस्तरे भी उनके सामानमें हैं । और भी बहुत सारी चीजें उनके पिटारोंमें हैं, जिनके विना आसानीसे एक आदमीका जीवन चल सकता है ।

"पश्चिममें सुधारोंका लक्षण ही माना गया है कि आदमी-की जरूरतें जितनी बढ़ सकें, उतनी बढ़ानी चाहिये । इसीको वे लोग तरक्की मानते हैं । पश्चिमके इस प्रयास-को हमें अपनाना नहीं है । हमें तो अपने देशके छोटे-छोटे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किसानोंके जीवनसे सीखना है। कम-से-कम कपड़ोंमें वह गुजर कर सकता है। अपने घरमें बर्तन और दूसरा सामान बहुत कम रखता है। फिर भी पूरा परिश्रम करता है और मनसे संतुष्ट और प्रसन्न रहता है। हमारी प्रगति अपने लिये ज्यादा सामान जोड़नेमें नहीं है, लेकिन थोड़े-से साधनोंके सहारे बढ़िया-से-बढ़िया काम करनेकी कलामें हमारी सही प्रगति होनेवाली है। अधिक धन बटोरने या सामान इकट्ठा करनेका मतलब है—औरोंकी आयको छीनना; इसकी जड़में हिंसा ही है। अपने लिये औरोंपर संकट लादना हिंसा ही कहलायेगी।

''सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यको हमें अपने मनमें पक्का करना है और अपरिग्रहको अपने रोजके व्यवहारमें लाना है। बाहरसे देखनेवाले हमारी सचाई और दया-भावना-की कसौटी आसानीसे नहीं कर सकते। लेकिन अपरिग्रह तो देखते ही समझमें आनेवाली बात है। अपरिग्रहके लिये हम संक्षेपमें कह सकते हैं कि हमारा जीवन सादे-से-सादा हो। बनावट—आडम्बरसे रहित, सीधा-सादा रहन-सहन हम अपनायें। इस दिशामें सदैव हमारा जागरूक प्रयत्न होना चाहिये।

× × ×

कोचरब आश्रममें गांधीके इस आदर्शका बड़ी बारीकीसे पालन किया जाता था। पानीकी एक बूँदतक व्यर्थ न बर्बाद होनेकी सावधानी बरती जाती थी।

अपरिग्रहकी साधना गांधीको स्वेच्छा-दारिद्र्यकी दिशामें ले गयी। गोपालकृष्ण गोखले दक्षिण अफ्रीकाका दौरा करने गये थे। उन्होंने बादमें लिखा था—'गांधीने अपना सब कुछ बलिदान कर दिया है। उनकी वकालत बड़े जोरसे चल रही थी। उससे उन्हें सालाना ५-६हजार पौंड प्राप्त हो जाते थे। यह रकम दक्षिण अफ्रीकामें किसी भी वकीलके लिये बहुत अच्छी बात मानी जायगी; किंतु वे इस सबका परित्याग करके प्रतिमास तीन पौंडपर गलियोंमें रहनेवाले सर्वथा विपन्न आदमीकी जिंदगी बिता रहे हैं।'

पर गांधीको गरीबोंके साथ तादात्म्यकी इस साधनामें कम कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़ीं। अपने संघर्षोंकी कहानीमें वह कहता है—

''जब मैंने अपनेको राजनीतिक जीवनके भँवरोंमें खिंचा हुआ पाया, तब मैंने अपने-आपसे पूछा कि मुझे अनैतिकतासे, असत्यसे और जिसे राजनीतिक लाभ कहा जाता है, उससे अछूता रहनेके लिये क्या करना जरूरी है? आरम्भमें मुझे काफी कठिन संघर्षसे गुजरना पड़ा और अपनी पत्नीके साथ तथा अपने बच्चोंके साथ भी बहुत झगड़ना पड़ा। मैं इस दृढ़ निश्चयपर पहुँचा कि यदि मुझे उन लोगोंकी सेवा करनी है, जिनके बीच मुझे जीवन बिताना है और जिनकी कठिनाइयोंको मैं दिन-प्रतिदिन देखता हूँ तो मुझे अपनी समूची सम्पत्ति तथा सारे परिग्रहका त्याग कर देना चाहिये।

''ऐसा नहीं है कि इस निश्चयपर पहुँचते ही मैंने प्रत्येक वस्तुका परित्याग कर दिया। पहले-पहल इस दिशामें मेरी प्रगति धीमी रही। अब जब मैं संघर्षके उन दिनोंकी याद करता हूँ, तब देखता हूँ कि आरम्भमें वह दुःखद भी था। लेकिन ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मैंने यह महसूस किया कि कई अन्य चीजोंका भी, जिन्हें मैं तबतक अपनी मानता था, मुझे त्याग करना चाहिये और एक समय ऐसा आया, जब उन वस्तुओंका त्याग मेरे लिये निश्चितरूपसे हर्षका विषय हो गया। तब एकके बाद एक ये सारी वस्तुएँ बहुत तेजीसे मुझसे छूटती गयीं। मेरे कंधोंसे एक भारी बोझ उतर गया। मुझे महसूस हुआ कि अब मैं आसानीसे चल सकता हूँ और अपने बन्धुओंकी सेवाके अपने कार्यको भी अधिक निश्चिन्तता और अधिक प्रसन्नताके साथ कर सकता हूँ। फिर तो किसी भी चीजका परिग्रह मेरे लिये कष्टदायक और भाररूप बन गया।

''इस हर्षके कारणकी खोज करते हुए मैंने पाया कि यदि मैं किसी भी चीजको अपनी मानकर अपने पास रखता हूँ तो मुझे उसकी सारी दुनियासे रक्षा भी करनी पड़ती है। मैंने यह भी देखा कि कई लोग ऐसे हैं, जिनके पास वह चीज नहीं है और यदि वे भूखे, अकालपीड़ित लोग मुझे एकान्तमें पायें तो केवल मेरे पासकी उस चीजका बँटवारा करके ही वे संतुष्ट नहीं होंगे, बल्कि उसे मुझसे छीन भी लेंगे और ऐसी हालतमें मुझे पुलिसकी सहायता भी प्राप्त करनी होगी। मैंने अपने आपसे कहा—यदि वे इसे चाहते हैं और लेते हैं, तो ऐसा वे किसी ईर्ष्यापूर्ण हेतुसे नहीं करते, लेकिन इसलिये करते हैं कि उनकी आवश्यकता मेरी आवश्यकतासे कहीं अधिक है।

''और तब मैंने अपने आपसे कहा—'परिग्रह एक अपराध है। मैं तभी अमुक चीजोंका संग्रह कर सकता हूँ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब मुझे ज्ञात हो कि दूसरे भी, जो उन चीजोंका संग्रह करना चाहते हैं, ऐसा कर सकते हैं ।' लेकिन हम जानते हैं कि ऐसा होना असम्भव है । अतः एक ही चीज ऐसी है, जो सबके द्वारा की जा सकती है और वह है—अपरिग्रह । दूसरे शब्दोंमें—स्वेच्छापूर्ण त्याग ।"

× × ×

एक ओर गांधीने अपरिग्रहकी साधना की, दूसरी ओर उसने गरीबीका गौरव किया । उसने महसूस किया कि 'हमारे देशमें गरीबीकी अपनी एक शान है । यहाँ गरीबको अपनी गरीबीकी शरम नहीं मालूम होती । वह अमीरके महलसे अपनी झोपड़ीको ज्यादा पसंद करता है । यही नहीं, बल्कि उसे उसपर नाज भी होता है । भौतिक वस्तुओंके मामलेमें गरीब होनेपर भी उसकी आत्मा गरीब नहीं होती । भारतके लोगोंमें एक ऐसा वर्ग है, जो अपनी जरूरतोंको कम करनेमें खुशी महसूस करता है ।'

ऐसे लोगोंकी चर्चा करते हुए गांधी कहता है—'ये लोग कपड़ेके छोटे-से टुकड़ेमें अपने लिये मुट्ठीभर आटा, चुटकी-भर नमक और मिर्च लेकर निकल पड़ते हैं । ये लोग कुएँसे पानी खींचनेके लिये अपने कंधेपर डोरी और लोटा लिये चलते हैं । उनके पास इसके अलावा और कोई चीज नहीं होती । हर रोज वे १०-१२मील पैदल चल लेते हैं । अपने पासके कपड़ेमें ही वे अपनी जरूरतका आटा सान लेते हैं । ईंधनके लिये पेड़ोंकी सूखी टहनियाँ चुनकर ले आते हैं और उसकी आँचपर अपने साने हुए आटेके टिक्कड़ सेंक लेते हैं । इस तरह सिका हुआ टिक्कड़ 'बाटी' कहलाता है । मैंने यह बाटी चखी है और मुझे वह बहुत स्वादिष्ट लगी है । असलमें स्वाद भोजनमें नहीं होता, बल्कि ईमानदारीसे की गयी मजदूरी और मनके संतोषसे जो भूख पैदा होती है, वही भोजनको स्वाद देती है । ईश्वर ऐसे ही लोगोंका साथी, मित्र या सहायक बनता है ।"

× × ×

जब मनुष्य अस्तेय और अपरिग्रहकी दिशामें बढ़ता है, सूक्ष्मतासे सोचने लगता है, तब वह स्वेच्छा-दारिद्र्यकी ओर जाता ही है । गांधीने वही किया ।

हम भी यदि गांधीके चरण-चिह्नोंपर चलना चाहते हैं तो उसका एकमात्र उपाय यही है कि हम दिन-दिन अपना परिग्रह घटाते चलें । सादा और पवित्र जीवन हमारा आदर्श हो । आवश्यकताएँ बढ़ानेके बजाय घटानेपर जब हम कटिबद्ध हो जायँ, तभी हम आत्मोन्नति कर सकेंगे, तभी हम देश और संसारकी उन्नति कर सकेंगे । जीवनकी सार्थकता इसीमें है—

"कर गुजरान गरीबीमें ।

अनन्य शरणागति

तुम तजि और कौन पै जाऊँ ?
काकें द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहा बिकाऊँ ॥
ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दियें अघाऊँ ।
अंत काल तुम्हरौ सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं दाऊँ ॥
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय पद ठाऊँ ।
कामधेनु, चिंतामनि दीन्हौ, कल्पवृक्ष तर छाऊँ ॥
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन में अधिक डराऊँ ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाऊँ ॥

—सूरदासजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चोर

(लेखक— श्रीरामेश्वरजी टाँटिया)

रातके नौ बजे थे। भोजन करके कुछ पढ़ रहा था कि मकानके फाटकपर शोर-गुल-सा सुनायी दिया। थोड़ी देर तो ध्यान नहीं दिया; परंतु जब आवाजें रोने-चिल्लानेमें बदल गयीं, तब नीचे आना पड़ा।

देखा, २०-३० व्यक्ति एक १२-१३ वर्षके दुबले-से लड़केको घेरे हुए हैं। उसके नाक और मुँहसे खून निकल रहा है। लोग बीच-बीचमें उसे दो-एक धौल भी जमा देते हैं।

पूछनेपर पता चला कि पासके सिनेमा-घरके बाहर मूड़ी-चनाके खोमचेसे दूकानदारकी आँख बचाकर मूड़ी लेकर भागता हुआ यह लड़का पकड़ा गया। फिर तो मोहल्लेके बदमाश लड़कोंको अपना जोर आजमाइश करनेका मौका मिल गया और मारते-मारते इसकी यह हालत कर दी।

उस मासूम बच्चेके चेहरेपर करुणाकी मार्मिक याचना देखी तो खोमचेवालेको दो रुपये देकर बिदा किया और अन्य सब लोगोंको भी समझा-बुझाकर वहाँसे हटा दिया।

दरवानसे लड़केको भीतर लानेके लिये कहा। लड़का उस समय भी भयसे काँप रहा था और अंदर आनेमें झिझक रहा था। शायद डरता था कि कहीं और मार न लगे या कोई नयी विपत्ति न आ पड़े। एक प्रकारसे ढकेलते हुए ही उसे लाया गया। मैंने प्यारसे सिरपर हाथ रखकर जब पूछा कि उसने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तब वह सुबक-सुबककर रोने लगा। थोड़ी देर तो कुछ बोल ही नहीं पाया। ऐसा लगता था कि मार और भूखसे बहुत ही व्याकुल हो गया है। उसे बेहोशी-सी आ रही थी। खानेके साथ एक गिलास गर्म दूध दिया, तब कहीं थोड़ा सँभल पाया।

मैंने उसे दूसरे दिन सुबहतक वहीं रहनेको कहा तो रोकर कहने लगा—'मेरी बीमार माँ घरपर अकेली है और कलसे भूखी है, वह मेरी राह देख रही होगी। मुझे इतनी राततक न पाकर बहुत चिन्तित होगी। इसलिये इस समय जाने दीजिये।' कुछ खाने-पीनेका सामान देकर दूसरे दिन उसे फिर आनेको कहकर भेज दिया।

दो-तीन दिन बीत गये। लड़केकी भोली सूरत भूल नहीं सका। दरवानको उसे बुलाने भेजा। देखा कि बालकके सिर एवं हाथपर पट्टी बँधी है और उसके साथ एक युवती किंतु कृशकाय और बीमार-सी स्त्री भी है। साड़ीमें जगह-जगह पेवंद लगे हुए थे, चेहरेपर दैन्य और बीमारीकी स्पष्ट छाया। फिर भी, उसके नाक-नक्शकी सुघराईसे लगता था, शायद किसी समय बहुत ही रूपवती रही होगी।

कहने लगी कि उस दिनकी मारसे बच्चेको बुखार आ गया था, कहीं-कहीं सूजन भी। स्त्रीके बोलनेके लहजेसे समझ पाया कि पूर्वी बंगालकी है। जो आत्म-कथा उसने सुनायी, वह इतने दिनों बाद भी भूल नहीं सका हूँ और कभी-कभी जब दुबले-पतले बच्चोंको भीख माँगते देखता हूँ तो उस मासूम बच्चेकी तस्वीर आँखोंके सामने आ जाती है।

खुलनाके पासके किसी देहातमें उनकी अच्छी-खासी खेतीकी जमीन थी। एक छोटा-सा पोखर भी था। सब प्रकारसे सुखी गृहस्थी थी। देशके विभाजनके बाद भी वे लोग वहीं रह गये। यद्यपि नाना प्रकारके कष्ट और अपमान झेलने पड़ते, तथापि एक तो कहीं अन्यत्र आसरा नहीं था, दूसरे, पूर्वजोंके घर और जमीन आदिके प्रति मोह-ममता भी थी जो उन्हें गाँव छोड़कर चले जानेसे रोके हुए थी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन् १९५८ में एक दिन अचानक ही गाँवके हिंदुओंपर हमला बोल दिया गया। जो मुसलमान हो गये, उनका जान-माल बच गया; जिन्होंने सामना किया, वे कत्ल कर दिये गये।

उसका पति वैष्णव, कण्ठीधारी कायस्थ था। किसी समय गाँवका मुखिया भी था और दोनों समय घरके ठाकुर-जीकी पूजा-अर्चना करता था। वह किसी प्रकार भी धर्म-त्याग करनेको तैयार नहीं हुआ। उसे खुदाके बंदोंने काटकर पासके पोखरमें डाल दिया। पड़ोसियोंके बीच-बचावसे किसी प्रकार बेचारी विधवा अपने ८ वर्षके बच्चेको साथ लेकर, सीमा पार करके भारतके 'वन-गाँव' में आकर रहने लगी। जो कुछ थोड़ा-बहुत सामान साथमें था, वह सब रास्तेमें लोगोंने लूट लिया।

उसने देखा कि वहाँपर पहलेसे ही पाकिस्तानसे आये हुए शरणार्थी बड़ी संख्यामें हैं और सरकारी कैम्पोंमें किसी प्रकार पेट पालन कर रहे हैं। परमात्माकी दयासे इनमेंसे बहुत-से अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे जल्दी-जल्दी मरकर रोज-रोजकी यातनाओंसे शीघ्र मुक्ति भी पा रहे हैं।

२६-२७ वर्षकी आयु, सुगठित अङ्ग-प्रत्यङ्ग। चेहरे-पर लावण्यकी स्पष्ट आभा। विपत्तिमें सुन्दरता भी अभिशाप बन जाती है। कैम्पके लिये नाम दर्ज करने-वाला इन्सपेक्टर रातमें उसकी 'सरकी' में आकर लेट गया। शरणार्थियोंके पुनर्वास और उनकी देखभालके लिये रखे गये ये लोग इतने बेशर्म और निधड़क हो गये थे कि न तो उन्हें किसीकी निन्दाका डर था और न मान-मनुहारकी आवश्यकता। किसी भी शरणार्थी लड़की या स्त्रीके साथ मनचाहा व्यवहार करना ये अपना अबाध अधिकार मानते थे। वह बेचारी भी विपत्तिकी मारी, भूखे पेट और थके तनको लेकर आखिर विरोध कहाँतक कर पाती? कैम्पमें जगह और सरकारी सहायता नहीं मिलनेपर संतानसहित तिल-तिलकर मरना पड़ता। इसलिये जीवित रहनेके लिये इस अपमानको भी आवश्यक मान लिया गया था।

लेकिन सुरमा उस धातुकी नहीं बनी थी। वह अपना शरीर नहीं दे सकी और जोर-जोरसे चिल्लाने लगी। खैर, उस समय तो वह इन्सपेक्टर चुपचाप खिसक गया। परंतु दूसरे दिन तो फिर दरख्वास्त लेकर उसीके पास जाना पड़ता। सुरमाको यह स्वीकार न था। अतएव रजिस्ट्री आफिसमें न जाकर उसने अपने बच्चेको साथ लिया और रास्तेके अनेक कष्ट झेलते हुए कलकत्ता आ गयी। यहाँ उसे एक घरमें दाईका काम मिल गया, रहनेको एक छोटी-सी कोठरी भी।

रूपवती विधवा युवती मोहल्लेके युवकोंके लिये अपने-आपमें एक आकर्षण है। वे बिना काम ही उसके घरके आस-पास मँडराते। कभी सीटी और कभी गंदी आवाजें कसते। लिहाजा उसे वह आसरा भी छोड़ देना पड़ा। सोचा तो यह था कि भारतभूमिमें अपने सहधर्मी बन्धुओंके बीच जीवनके बाकी दिन किसी प्रकार चैनसे बिता पायेगी, अपने बच्चेकी जैसे-तैसे परवरिश करेगी; किंतु, उसे क्या पता था कि पाकिस्तानकी तरह यहाँ भी मनुष्यके रूपमें भूखे भेड़ियोंकी कमी नहीं है।

कई बार मनमें आया कि तिजाब छिड़ककर मुँहको बदरंग कर ले, परंतु कुछ तो पीड़ाके भयसे और कुछ बच्चेका खयाल करके वह यह सब नहीं कर पायी।

कई जगह भटकते हुए उन्हें ढाकुरिया लेकके पास एक शरणार्थी परिवारके यहाँ रहनेका सहारा मिल गया। परंतु केवल आवासकी व्यवस्थासे पेटकी भूख तो नहीं मिटती। भीख माँगनेमें पहले-पहल तो झिझक हुई, परंतु फिर आदत पड़ गयी और किसी तरह दो जून खाना मिलने लगा।

बच्चा देखनेमें सुन्दर और बातचीतमें चतुर था। सुबह-शाम जो सैलानी लेकपर आते, उनकी मोटरोंकी सफाई और सम्हाल करता रहता। वे उसे दो-चार आने बख्शीशके तौरपर दे देते। कभी-कभी धमकाकर ऐसे ही भगा देते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दिन माँको बुखार आ गया। सीलनभरी जमीनपर बिना चारपाईके सोनेसे और भूखजनित कमजोरीसे यह साधारण और स्वाभाविक बात थी। डाक्टरको दिखानेका तो प्रश्न ही नहीं था, पड़ोसकी एक वृद्धाने उसे दो गोली कुनैनकी लाकर दी और मूड़ी खानेको कहा। बच्चा मूड़ी लानेको घरसे निकला। दिनभर खड़ा रहनेपर भी उस दिन जब कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई, तब उसने माँकी भूखका खयाल करके सड़कपरके खोमचेसे कुछ मूड़ी चुरा ली, परंतु भागते हुए वह पकड़ लिया गया।

यही कहानी थी, जो उसकी माँकी जबानी मैंने उस दिन सुनी थी।

लड़केकी पढ़ाई नहींके समान थी। इसलिये उसे अपने आफिसमें चपरासीके रूपमें रख लिया गया। यह कई वर्ष पहलेकी बात है। सुरेन अब बड़ा हो गया है, उसने कुछ अंग्रेजी और हिंदी भी पढ़ ली है। मेरे यहाँ जितने कर्मचारी हैं, उनमें वह सबसे अधिक मेहनती और ईमानदार है। गरीब बंगालियोंमें लड़कियोंकी कमी नहीं है। सम्भव है, थोड़े वर्षों बाद उसका विवाह हो जाय, तब उसकी दुखिया माँको बहुत वर्षों बाद गृहस्थीका थोड़ा-सा सुख देखनेको मिले।

आज भी मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि क्या उस दिन सचमुच सुरेनने चोरी की। बादमें तो कभी भी कोई शिकायत नहीं मिली। क्या मनुष्य स्वभावसे चोर होता है या परिस्थितियाँ उसे मजबूर करती हैं ?

नैतिक मर्यादाओंका उल्लङ्घन न करें

[एक महात्माके प्रवचनके आधारपर]

(प्रेषक—श्रीवीरबलप्रसादजी शुक्ल)

प्रत्येक मानवमें एक मौलिक इच्छा काम करती है—वह है सुखपूर्वक जीवन-यापन करनेकी इच्छा। अपने आपको हर प्रकारके सुख-साधनोंसे सम्पन्न देखना मानवकी एक मौलिक वृत्ति है। जीवनमें सुख-प्राप्तिकी यह इच्छा दो प्रकारसे परिलक्षित होती है। संसारमें एक तरहके मानव स्वयं अपनेको केन्द्र मानते हैं तथा जिस तरह भी आनन्द अथवा सुख उपलब्ध हो सके, उसके किये प्रयत्न करते हैं। वे तरह-तरहकी सामग्री एकत्रित करके ऐश-आरामके मार्ग खोज निकालते हैं। ऐसे मनुष्य अपने उद्देश्यमें किसी हदतक सफल भी होते हैं। वे अपने ही सुखपर केन्द्रित रहते हैं, उनके लिये दूसरोंकी स्थितिका महत्त्व नहीं होता। उनके सुखके द्वारा होनेवाले दूसरोंके कष्टका भी उनकी दृष्टिमें कोई महत्त्व नहीं होता है।

दूसरे प्रकारके व्यक्ति वे होते हैं, जो जीवनमें प्राप्त सुखोंका दूसरोंके लिये त्याग करते हैं। दूसरोंको सुखी देख उन्हें सुख प्राप्त होता है, आनन्द एवं संतोष मिलता है। यह सुखी होनेका दूसरा रूप है। इसके लिये मनुष्य जीवनमें उन उच्चादर्शोंको लेकर चलता है, जिनसे सबको सुख मिले।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

इन समाजवादी पवित्र विचारोंसे उसका हृदय ओतप्रोत रहता है। वह अपने प्रत्येक कार्य एवं आचरणका मूल्याङ्कन समष्टिगत स्तरपर करता है।

यही स्वरूप मानवमें नैतिकता एवं धर्मव्यवस्थाका मूलाधार है। इसमें जीवनका उद्देश्य भौतिकवादी न होकर अध्यात्मवादी होता है। यही समाजव्यवस्थाकी आधारशिला है, आत्मीयता—मानवताके विकासका केन्द्रबिन्दु है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसके विपरीत व्यक्तिगत स्वार्थपरता, अनैतिकता, अधार्मिकता एवं अनुचित स्वार्थभाव ही मनुष्य तथा समाजके विकासकी गतिका अवरोधक है तथा मनुष्यके नैतिक पतनकी निशानी है।

मानवकी नैतिक सीमाएँ ही उसकी सफलताकी सीमाएँ हैं। यह इतना स्पष्ट सत्य है कि किसी भी व्यक्तिकी सफलता-असफलता, योग्यता-अयोग्यता एवं आचरणकी शिष्टताका सही मापदण्ड उसी प्रकार बताया जा सकता है, जैसे गणितके सिद्धान्तोंके आधारपर किसी प्रश्नका हल निकाला जा सकता है।

जिस तरह आकाशमें फेंकी गयी वस्तु पृथ्वीपर लौट आती है, उसी तरह अच्छा या बुरा कर्म भी लौटकर कर्तापर ही आता है। प्रत्येक अनैतिक कार्यका परिणाम पराजय, असफलता, अपने लक्ष्यसे दूर हट जाना ही होता है। इसके विपरीत प्रत्येक नैतिक कार्य सफलता एवं लक्ष्यप्राप्तिके सुन्दर भवनका निर्माण करता है। किसी भी समाज अथवा राष्ट्रका उत्थान नैतिक शक्ति एवं ज्ञानके विकाससे ही होता है। नैतिक पतन ही विनाशका दूसरा रूप है।

कोई भी बुरा काम करनेपर हृदय धक्-धक् करने लगता है, रक्तका संचार बढ़ जाता है, पैर लड़खड़ाने लगते हैं, शरीरमें पसीना आ जाता है। ऐसा लगता है, मानो कोई रोक रहा है। कोई भी अनैतिक एवं बुरा काम करनेपर आत्मभर्त्सना होने लगती है, मन आत्मग्लानि तथा पश्चात्तापसे भर जाता है। यह सब अनैतिक भावके कारण होता है, जो उसके अन्तःक्षेत्रमें स्थित है। यह भाव मनुष्यकी चेतनाशक्तिका एक अङ्ग है, जो किसी कृत्रिम प्रयत्नका परिणाम नहीं, वरं जीवात्माके एक लंबे समयके संस्कार, अभ्यास और सृष्टिमें काम कर रहे दैवी विधानका व्यापक नियम हैं। नैतिकताकी अवहेलना करनेपर मनुष्यको सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाके अनुसार विभिन्न रूपोंमें दण्ड प्राप्त होता है। सरकार और समाजके दण्डसे मनुष्य किसी प्रकार बच भी सकता है; किंतु नियतिके विधानसे नहीं बच सकता, जिसका निर्णायक कहीं बाहर नहीं, स्वयं मनुष्यके अंदर ही विराजमान है। उसके अनुसार मनुष्य कई प्रकारकी शारीरिक एवं मानसिक तकलीफें सहन करता है, जो दोनों प्रकारके बाह्य दण्डोंसे अधिक कष्टकारक हैं। नैतिक भावसे अन्तरात्माकी आवाजके विरुद्ध आचरण करनेपर मनुष्यको आत्मभर्त्सना होने लगती है, जिससे मानसिक शक्ति एवं इच्छाशक्तिका भी पतन होने लगता है। इस प्रकार मानव हर तरहसे दीन-हीन बन जाता है। आन्तरिक जीवनकी छाया मनुष्यके बाह्य जीवनपर पड़ती है। इस प्रकार मानवका हर तरहसे पतन हो जाता है।

मनुष्य अपनी चालाकी एवं चतुरतासे अनैतिक कार्योंको छिपानेकी कोशिश करता है। बाह्य जगत्में वह सफल भी हो सकता है, किंतु दैवी विधानको धोखा नहीं दे सकता। कई बार मनुष्य अपनी धर्म-बुद्धि, नैतिकताकी आवाजको दबाने तथा पापको भुलानेके लिये मनचाहे तर्क एवं विचारोंका अवलम्बन लेता है। अपने आचरणोंके औचित्यको सिद्धकर मनमें संतुष्ट होनेका असफल प्रयास करता है। दैवी विधान दूसरे ही ढंगसे पापका दण्ड और उसके प्रकाशित करनेका मार्ग खोज लेता है। इस दैवी विधानको जरा ध्यानसे सोचने-समझनेकी आवश्यकता है।

सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर दुःख, शोक, हानि, पीड़ा, क्लेशकी आड़में मनुष्यके अनैतिक कार्योंका परिणाम देखनेको मिलता है। दूसरोंकी नींद हराम करनेवाले स्वयं चैनसे नहीं सो सकते। चोर, लुटेरे, तस्करोंको घर बसाकर सुख-शान्तिसे जीवन बिताते नहीं देखा जाता। आज नहीं तो कल, अनैतिकताका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिणाम दुःखदायी एवं विनाशकारी होता है।

व्यक्तिका आधार-स्तम्भ नैतिकता है। इसीके सहारे सच्ची सुख-समृद्धिकी प्राप्ति होती है। नैतिक आदर्शोंकी प्राप्ति सत्यकी प्राप्ति है। इन्हींके द्वारा मनुष्य निजानन्द, स्वातन्त्र्य एवं शक्ति प्राप्त करता है। यदि मानव नैतिक सिद्धान्तोंके अनुसार कार्य करता रहे तो जीवनमें आनेवाली अनिश्चित घटनाओं, तूफानों एवं उलझनपूर्ण समस्याओंमें भी सम्पूर्ण सुरक्षा एवं शान्ति प्राप्त करके विश्वासके साथ जीवनमें समृद्धि-लाभ एवं विकास कर सकता है।

उपपुराणोंकी समस्या और श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

[गताङ्क पृष्ठ ९९७ से आगे]

(९) श्रीविष्णुधर्मोत्तर और वैष्णवधर्म

श्रीरामकृष्ण गोपाल भंडारकरकी "Vaishnavism, Saivism and Minor Religious Systems" नामकी पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। १९१३ में वह प्रथम बार स्ट्रासबर्ग (Strassburgh, Germany) से प्रकाशित हुई थी। उसमें उन्होंने प्राचीन वैष्णवोंके अनेक भेदोंका उल्लेख किया है। उनके मतसे भागवतमतानुयायी, पाञ्चरात्रमतानुयायी आदि वैष्णवोंके कई भेद थे। फिर पाञ्चरात्र आदिमें भी कई अवान्तर भेद थे। महाभारतके उल्लिखित नारायणीयधर्ममें यह मत पाञ्चरात्रोंकी अपेक्षा कुछ परिष्कृत हुआ। बुह्लर तथा हाजरा आदिके अनुसार विष्णुधर्मोत्तर भी पाञ्चरात्रमतानुयायियोंका ही ग्रन्थ है, भागवतोंका नहीं—

"The Viṣṇudharmottara is avowedly a Vaiṣṇava work claiming to deal with the various duties of the Vaiṣṇavas. It belongs to the Pañcharātras and is not a production of the Bhāgavata sect, as Buhler takes it to be. It recommends the Pañcharātra method of Viṣṇu-worship, adds great importance to the due observance of Pañchakala, holds the scripture of Pañcharātra in high esteem and extols one who honours, or make gifts to, those who are versed in these scriptures." (Indian Antiquary, XIX 1890, p. 382)

इनके मतानुसार भागवतोंमें पारमहंस्य-भाव और भावाधिकता मुख्य वस्तु थी,* जब कि पाञ्चरात्रमतानुयायियोंमें स्मार्त्त कर्मकाण्डके विस्तारपर अधिक बल दिया जाता था।†

श्रीविष्णुधर्मोत्तर, प्रथमखण्डके ५१ से ६३ अध्यायोंतक

* प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम्।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः॥
(श्रीमद्भा० ६। ३। २४)

† पुराणोंपर इन आधुनिक अनुसंधानोंसे हम मूलतया सहमत नहीं हैं। भागवत आदि ग्रन्थोंमें, जिन्हें ये लोग भागवतोंका साम्प्रदायिक ग्रन्थ मानते हैं, 'वैष्णव' शब्द भी आदरसे इसी भावमें गृहीत है। बल्कि 'श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां धनम्।' (यह श्लोक मूलभागवतके अन्तमें तथा पाद्मोक्त भागवत-माहात्म्यमें भी आया है।) में वैष्णवका धन 'भागवत' ही बतलाया है और ११वें स्कन्धमें स्मार्तमतका भी पूर्ण आदर है। अतः इन तीनोंमें कोई मौलिक भेद कदाचित् न था।

इसी तरह ये लोग पुराणोंके सात द्वीपोंको (जिसका विष्णुधर्मोत्तरके ६ से ११तकके अध्यायोंमें वर्णन है), जिनमें पर-परको जम्बू आदि पूर्व-पूर्वसे द्विगुणमान तथा भिन्न आवरणोंसे आवृत बतलाया है, भारतके भीतर या अफगान, कम्बोडिया आदिमें मानते हैं, जैसा कि 'पुराणम्' १९७०के पत्रके अङ्क १ वर्ष १२, पृष्ठ ५६ (Various other writers identify with different regions) आदिमें प्राप्य है। इसमें परस्परविरोधी मतोंकी तो गणना ही सम्भव नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान् विष्णु एवं उनकी उपासना-पद्धतिपर विस्तृत प्रकाश है। इसके ५२वें अध्यायमें एकमात्र- अनिर्देश्य, अक्षरस्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, आदिदेव जगन्नाथ विष्णुको ही सर्वोपरि ध्येय स्मरणाई तत्त्व बतलाया गया है। (इस अध्यायमें गीताके १३वें अध्यायके कितने ही श्लोक हैं।) ५६वें अध्यायमें भगवान्की दिव्य विभूतियोंका वर्णन है। (इस प्रकारके वर्णन गीता अध्याय १०, भागवत स्कन्ध ११। २० तथा शिवपुराण १। १५ एवं वायुपुराणोक्त माघमाहात्म्य अ० १७ आदिमें भी प्राप्त होते हैं।) इसके ५८वें अध्यायमें भगवान् केशवके तुष्टिकारी साधनों, क्रियाकलापोंका कथन है। इस अध्यायके अधिकांश श्लोकोंके चतुर्थ चरणमें 'तस्य तुष्यति केशवः' आ जाता है। कुछ श्लोक बड़े हृदयग्राही हैं—यथा

> शृणुते सर्वधर्मांश्च सर्वान् देवान् नमस्यति।
> अनसूयुर्जितक्रोधस्तस्य तुष्यति केशवः॥
>
> (१। ५७। ८)

'जो सभी सद्धर्मोंकी बातोंको आदरसे सुनता है, सभी देवताओंको प्रणाम करता है, किसीसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं करता, क्रुद्ध नहीं होता, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।'

> अप्रणम्य क्रियां कांचिद्यस्तु नारभते हरिम्।
> असम्भिन्नार्थमर्यादस्तस्य तुष्यति केशवः॥
>
> (वही ५७। २४)

'जो भगवान् विष्णुको नमस्कार किये बिना किसी भी कार्यका आरम्भ नहीं करता, जो शील, विनय तथा मर्यादासे सम्पन्न है, उसपर भगवान् केशव—विष्णु प्रसन्न रहते हैं।' इत्यादि।

इसके आगे ६१से ६५तकके अध्यायोंमें वैष्णव-व्रतों तथा अभिगमन उपादान-इज्या-स्वाध्यायादि पञ्चवैष्णव-कलाओंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके ७४वें अध्यायमें भगवान् विष्णुके प्रमति, भीमरथ आदि कुछ ऐसे अवतारोंकी भी कथाका वर्णन है, जिनका उल्लेख प्रायः अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। फिर कल्प-मन्वन्तरादिका वर्णन तथा विष्णुमाहात्म्यके प्रसङ्गमें मार्कण्डेयजीकी कथा वर्णित है और भक्तक्रममें ध्रुवादिकी। १२२-२९तकमें कृष्णावतार एवं (पुरूरवा) उर्वशीकी कथा है, जो नारायणके ऊरुसे उत्पन्न हुई थी। फिर १४० से २०० अध्यायोंतक श्राद्ध, व्रत, देवालयनिर्माण एवं विष्णुपूजापद्धति-स्तुति आदि प्रसङ्ग हैं। २०० से २१७ तकके अध्यायोंमें श्रीरामकी कथाएँ हैं, जो अन्यत्र नहीं मिलतीं। इसके आगे भी शिवचरित्र, विश्वसर्ग, विष्णुशयनोत्सव आदिकी कथाएँ हैं। इस खण्डमें २६९ अध्याय हैं।

(१०) अन्य विषय

खण्ड २में विस्तारसे राजधर्मका निरूपण है। इसमें १८३ अध्याय हैं। इतना विस्तारसे राजनीतिका वर्णन और कहीं नहीं हुआ है। साथ ही इसमें राजोपयोगी धनुर्विद्या, ज्योतिर्विद्या, शकुनशास्त्र, रत्नशास्त्र, अश्व-गज-वृष-लक्षण-चिकित्सा आदिपर पूर्ण प्रकाश है।

तीसरे खण्डमें ३५५ अध्याय हैं। (इस तरह समग्र ग्रन्थमें ८०७ अध्याय हुए।) इसमें कई विशालकाय ग्रन्थोंका समावेश दीखता है—जैसे चित्रसूत्र, नाट्यशास्त्र, भाषा-लक्षणशास्त्र, छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र, प्रतिमा-प्रासाद-लक्षण एवं निर्माण-कला, यज्ञ-हवन-विधि, विविध विद्याओं आदिका तो ३०-३० अध्यायोंमें तथा क्षमा, दया, दान, ब्रह्मचर्य आदि सैकड़ों धर्मोंका एक-एक या दो-दो अध्यायोंमें निरूपण है। इसमें अनेक तीर्थ, पर्वत, नदियों, देवस्थानों एवं ऋषि-आश्रमोंका भी वर्णन हुआ है। इसके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य कथाएँ भी हैं।

(११) ग्रन्थका रचनास्थल

A. M. Jackson ने बंबई शाखाकी एशियाटिक सोसाइटीके जर्नलके शताब्दी-संस्करणमें तथा E. J. Rapson ने कैम्ब्रिजके भारतीय इतिहास, जिल्द १ में पुराणोंके रचनास्थलोंपर विचार किया है, जिसका विस्तारसे उल्लेख हम 'कल्याण', वर्ष ४४ के अङ्क २, पृष्ठ ७२३ पर कर आये हैं। इसी प्रकार 'Indian Antiquary' जिल्द XIX, पृष्ठ ३८३ पर बुहलरने, 'History of Indian Literature' जिल्द १के पृष्ठ ५८०पर विंटरनीज (Winternitz) ने और 'Studies in the Purāṇas' जिल्द १के पृष्ठ २१६पर श्रीराजेन्द्रचन्द्र हाजराने भी श्रीविष्णुधर्मको काश्मीरकी रचना माना है:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"A study of the Viṣṇudharmottara shows that the author or authors of this work had an intimate acquaintance with the geography of Kashmir as well as of the Northern part of the Punjab. In Viṣṇudharmottara, III. CXXV. 10. Kashmir has been mentioned as a seat of Viṣṇu. From the evidences above it is highly probable that the Viṣṇudharmottara was composed somewhere in southern Kashmir."

पर नारदपुराणके पूर्वोक्त विवरणसे यह आजसे प्रायः ४ सहस्र वर्ष पूर्व भगवान् व्यासद्वारा बदरीनारायण (शम्याप्रास) के व्यासाश्रममें ही रचित है । (द्रष्टव्य R. G. Mankad की 'Indian Chronology').

(१२) प्रभावित ग्रन्थराशि

श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणसे मिलती-जुलती तथा प्रभावित साहित्यराशिमें निम्नलिखित कृतियाँ अत्यन्त महत्त्वकी हैं:—

श्रीविष्णुधर्म*, वैष्णवधर्मशास्त्र, अग्निपुराण (प्रायः इसका तीन चतुर्थांश श्रीविष्णुधर्मोत्तरमें है), नरसिंहपुराण, आनन्दरामायण, कामंदकनीतिसार, शुक्रनीतिसार, वैशम्पायन-नीतिप्रकाशिका, अपराजितपृच्छा, अश्ववैद्यक, गजवैद्यक, शालिहोत्र, योगरत्नाकर, भावप्रकाश, काश्यपसंहिता, कर्मकाण्ड-क्रमावली, जातकचन्द्रिका, ज्योतिर्विदाभरण, ज्योतिर्निबन्ध, ज्योतिषकल्पद्रुम, फलदीपिका, धनुर्वेद-संहिता, नरपति-जयचर्या, प्रतापरुद्रयशोभूषणम्, बृहत्संहिता, मानसोल्लास (अभिलषितार्थ-चिन्तामणि), शैवरत्नाकर (बसवराज-विरचित शिव-तत्त्व-रत्नाकर), मातङ्गलीला, युक्तिकल्पतरु, योग-तरङ्गिणी, समराङ्गण-सूत्रधार, रत्नलक्षण, भरतनाट्य, काव्यादर्श (दण्डी), काव्यालंकार (भामह, रुद्र आदि), सामुद्रिकतिलक, शिल्परत्न, भावप्रकाश (नाट्यग्रन्थ), नाटकलक्षणसंग्रह कोश, प्राकृतप्रदीप, सर्वार्थचिन्तामणि, शारदातिलक और सौगन्धिकाहरण इत्यादि ।

अब अगले अङ्कमें संक्षेपमें उपर्युक्त ग्रन्थोंका कुछ तुलनात्मक अध्ययन तथा श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराणके परम कल्याणकारी परामर्शप्रद सदुपदेशोंपर विचार किया जायगा ।

(क्रमशः)

---

* इस नामका भी एक अन्य पुराण है, जो 'बृहद्धर्म'में परिगणित हुआ है और जिसकी एक हस्तलिखित प्रति एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्तामें सुरक्षित है । उक्त सोसाइटीके ग्रन्थागारमें इस पुस्तक (विष्णुधर्म) की सामान्य ग्रन्थ-संख्या ४०९९ तथा हस्त-लिखित पुस्तक-संख्या १६७० है । इस ग्रन्थका हस्तलेख देवनागरी वर्णमालामें है । वहीं ४१०० संख्या (हस्त लें० पुस्तक ३५०६) पर एक इसकी दूसरी प्रतिलिपि बंगाक्षरोंमें भी प्राप्त है । इसमें १०५ अध्याय तथा ४ हजारसे कुछ अधिक ही श्लोक हैं । इसके प्रथम अध्यायमें योगनिरूपण, दूसरेमें क्रियायोग एवं अम्बरीषकी विष्णुभक्ति, तीसरेमें शुक्राचार्यद्वारा प्रह्लादको भागवतधर्मका उपदेश, अध्याय ४—१० में विष्णुसम्बन्धी व्रत-पूजनादि, ३५-३६ में भारतके ६८ तीर्थ (पुष्कर, प्रयाग, गया, जयन्ती, कुब्जाम्र आदि; ये वे ही तीर्थ हैं, जिनका वर्णन 'कल्याण'के गत तीसरे अङ्कके पृष्ठ ८२७ पर हो चुका है), ४० से ४५ तकमें कर्मयोग, ४७ से ६० तकके अध्यायोंमें विविध दान-धर्म तथा शेष ग्रन्थमें विस्तारसे क्रियायोगका निरूपण है । डा० हाजराके मतसे यह ग्रन्थ भागवतोंका है और चूँकि लक्ष्मीधर, चण्डेश्वर आदिने अपने ग्रन्थोंमें इसके लंबे-लंबे उद्धरण दिये हैं और आग्नेयपुराणपर भी इसका प्रभाव है, अतः यह ग्रन्थ ईसवी सन्‌की द्वितीय-तृतीय शती और पश्चिमोत्तर भारत (पंजाब) के किसी स्थानकी रचना है । "Thus the date of composition of the present Viṣṇudharma falls between 200 and 300 A. D........., and from the facts that of the holy places named in Chapter 36 almost all belong to Northern India, and a large number to its western part, and that the small river Devikā has been mentioned on two occasions and considered as much sacred as the Gangā, Yamuna etc., it appears that the Viṣṇudharma was written in the north-western part of Northern India pp. 143 and 165 *ibid.*" (The Major Vaiṣṇava Purāṇas)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परमार्थ-पत्रावली

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पुराने पत्र)

(१)

सादर हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला । आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) वेदमें मूर्तिपूजाके प्रमाण बहुत हैं । पहले मूर्तिपूजाका अर्थ समझ लेना चाहिये ।

(क) कोई भी आस्तिक सनातनधर्मी हिंदू वास्तवमें मूर्तिपूजा नहीं करता, अपितु मूर्तिको निमित्त बनाकर अपने इष्टकी ही पूजा करता है । जो लोग वेदका प्रमाण चाहते हैं, उनको विचार करना चाहिये कि वेद ईश्वरीय ज्ञानका नाम है या कागज और स्याहीका अथवा शब्दका । विचार करनेपर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि कागज और स्याहीद्वारा एक आकृति विशेषमें जो 'वेद' नामसे कहे जानेवाले ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं, वे वेदके प्रतीक हैं, वेद नहीं; क्योंकि वेद अनादि और नित्य है । पुस्तक तो हमारे सामने छपी हुई और नष्ट होनेवाली है, उसे न तो अनादि कह सकते हैं और न नित्य ही । पर जिसको वेदका अध्ययन करना है, उस ज्ञानको प्राप्त करना है, उसे उस पुस्तकका, अकारादि वर्णोंका (जो मूर्तिमान् हैं) और वाणीका आश्रय लेना ही पड़ेगा । बिना उनके वह वेदको (ईश्वरीय अनादि ज्ञानको) नहीं पा सकता । इसी प्रकार उस सर्वशक्तिमान् ईश्वरको, जो अनादि, अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी और निराकार है, प्राप्त करनेके लिये प्रतीकका आश्रय भी लेना ही पड़ेगा । बिना मूर्तिके पूजा या उपासना कैसे होगी ? जो भाई 'ॐ'का जप करते हैं, उनको विचार करना चाहिये कि क्या 'ॐ' साकार नहीं है ।

(ख) अथर्ववेदके काण्ड ८, अनुवाक ५, सूक्त ९, मन्त्र ६ में वैश्वानर (विश्वरूप पुरुष) भगवान्की प्रतिमाका वर्णन इस प्रकार आया है—

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्-
रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा
उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः ॥

(ग) यजुर्वेद अध्याय ३, मन्त्र ६० में त्रिनेत्र भगवान् शंकरके पूजनकी बात कही गयी है । यथा—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

'धन-धान्यको बढ़ानेवाले उत्तम गन्धसे युक्त त्रिनेत्रसम्पन्न शंकरकी हम पूजा करते हैं । वे हमको, जैसे पका हुआ फल वृक्षसे झड़ जाता है, वैसे ही मृत्यु (जन्म-मरण) के बन्धनसे मुक्त करें । मैं अमृतरूप परमात्मा आपसे कभी वियुक्त न होऊँ ।'

इस प्रकरणमें त्रिनेत्रसम्पन्न भगवान्का आगे-पीछेके अनेक मन्त्रोंमें वर्णन है, उदाहरणके लिये केवल एक ही मन्त्र दिया गया है ।

(घ) अथर्ववेद, काण्ड २, अनुवाक ३, सूक्त १३, मन्त्र ४ देखिये—

एह्यश्मानमा तिष्ठ अश्मा भवतु ते तनूः ।

'हे भगवन् ! आप आयें, पत्थरमें स्थित हों । यह पत्थर आपका शरीर हो जाय ।' इस मन्त्रका मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा करते समय उच्चारण किया जाता है ।

(ङ) सामवेद, षड्विंश ब्राह्मणमें देखें—

देवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति रुदन्ति नृत्यन्ति स्फुटयन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति निमीलन्ति ।

'देवताओंके मन्दिर डगमगाते हैं, देवोंकी मूर्तियाँ हँसती हैं, रोती हैं, नाचती हैं, पसीजती हैं, उनके अङ्ग फट जाते हैं, नेत्र खोलती और बंद करती हैं ।'

(च) यजुर्वेद अ० १६ मन्त्र २ देखें—

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शंतमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥

'हे रुद्रदेव ! तेरी जो भयानकताके दोषसे शून्य पुण्य-पुञ्जसे प्रकाशित होनेवाली कल्याणमयी मूर्ति है, हे कैलास-पर्वतवासी शिव ! उस परम शान्त मूर्तिके द्वारा हमलोगोंकी ओर देखें ।

(छ) भगवान् विष्णुकी मूर्तिका वर्णन तथा उनसे प्रार्थना आदि अथर्ववेद काण्ड ७, सूक्त २६-२७-२८ में बार-बार आयी हैं, पत्रमें कहाँतक लिखा जाय ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और भी बहुत-से प्रमाण हैं; परंतु जिनका आग्रह मूर्ति-पूजामें विश्वास न करनेका है, वे इन प्रमाणोंका अर्थ भी मनमाना कर लेते हैं। इसका क्या उपाय!

(२) अवतारका वर्णन वेदोंमें बहुत जगह आया है। कुछ प्रमाणोंका दिग्दर्शन कराया जाता है—

(क) शुक्लयजुर्वेद अ० ३१, मन्त्र १९ पुरुषसूक्तमें देखिये—

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

'समस्त प्रजाके स्वामी भगवान् गर्भके भीतर विचरते हैं। वे न जन्मते हुए ही बहुत प्रकारसे जन्म लेते हैं।'

यह कथन गीता अ० ४ श्लोक ६से बहुत ही मिलता-जुलता है। वहाँ लिखा गया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

'मैं अजन्मा, अविनाशी और समस्त प्राणियोंका ईश्वर हूँ, तो भी अपनी प्रकृतिका अधिष्ठाता होकर अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

(ख) मुण्डक उपनिषद्के मुण्डक ३, खण्ड २, मन्त्र २ में तथा कठोपनिषद्के अध्याय १, वल्ली २, मन्त्र २३में तो स्पष्ट कहा है कि 'जिस परमात्माका वर्णन पूर्वमें कर आये हैं, यह प्रवचनसे, प्रखर बुद्धिसे, बहुत सुननेसे नहीं मिलता है; किंतु यह जिसको स्वीकार कर लेता है, उसको प्राप्त हो सकता है—उसके सामने अपना शरीर प्रकट कर देता है।'

दोनों जगह एक ही मन्त्र है। उसमें स्पष्ट लिखा है—'तस्य एष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्' अर्थात् 'उसके लिये यह परमात्मा अपना शरीर (तनूम्) प्रकट कर देता है।' इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् अपने भक्तोंको अपना दर्शन जब चाहें दे सकते हैं।

(ग) त्रिविक्रम अवतारका वर्णन सामवेद अ० १८, खण्ड २, सूक्त १, मन्त्र १-३ देखें।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुले।१।

'त्रिविक्रम-अवतारधारी भगवान् विष्णुने इस समस्त त्रिलोकीको नापनेके उद्देश्यसे तीन प्रकारसे पैर रखे, अपने पैरकी रजसे समस्त जगत्को ढक दिया।'

इसके बाद मन्त्र २ भी इसी विषयमें है। तीसरेमें विष्णुको इन्द्रका सखा बताया गया है। चौथेमें उनके परमधामका कथन है। पाँचवेंमें उस परमधामकी महिमाका वर्णन है तथा छठा भी इसका समर्थक है।

अथर्ववेद, काण्ड ७, सूक्त २७ के मन्त्र ४, ५, ६ और ७ ठीक इसी प्रकार हैं, दोनों जगह एक ही पाठ है। ऋग्वेदमें भी यही पाठ मिलता है।

(३) यज्ञद्वारा हवन किये हुए अन्नसे देवताओंकी और पितरोंकी तृप्ति होती है, इसके प्रमाणोंसे तो चारों वेद भरे पड़े हैं। आप चाहें जितने मन्त्र वेदोंमें देख सकते हैं। अथर्ववेदके १८ वें काण्डका तीसरा सूक्त पूराका पूरा पितृयज्ञके वर्णनसे भरा है। इसमें दिव्य पितरोंके नाम, उनके लिये हवि अर्पण करनेका विधान, उनसे नाना प्रकारकी प्रार्थना, अग्निके द्वारा उनको कव्य और देवताओंको हव्य पहुँचानेका वर्णन आदि विस्तारसे हैं। इसी प्रकार और भी बहुत जगह हैं।

यजुर्वेद, अध्याय १९-५८में पितरोंके विषयमें बहुत बातें स्पष्ट लिखी हैं। वहाँके कुछ मन्त्र इस प्रकार हैं—

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्।

'हमारे पितर देवयानमार्गसे इस यज्ञमें आवें। हमारी दी हुई स्वधासे प्रसन्न होते हुए बोलें और वे हमारी रक्षा करें।'

यो अग्निः कव्यवाहनः पितॄन् यक्षदृतावृधः।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ॥
(१९ । ६५)

'जो कव्यवाहन (कव्यका वहन करनेवाला) अग्निदेवता सत्यकी वृद्धि करनेवाले पितरोंको अन्न पहुँचाया करता है, वह आज पितरोंको और देवताओंको उनके समर्पण की हुई हवि निवेदन करे।'

इसके अगले मन्त्रमें कहा है कि 'वे पितृगण और देवतागण हविको भक्षण करें।' ६७ वें मन्त्रमें यह भी कहा है कि 'जो पितर लोग इस लोकमें हैं और जो यहाँ नहीं हैं, अन्य-लोकमें हैं, जिनको हम जानते हैं और जिनको नहीं जानते, उन सबको हे जातवेदा अग्निदेव! आप जानते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हैं। अतः आप उनको पहुँचा दें।' यह सब प्रकरण देखने योग्य है।

इसी प्रकार अथर्ववेदमें भी लिखा है—

त्वमग्न ईडितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वा।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि॥
(१८।३।४२)

'हे जातवेदा अग्निदेवता! हम आपकी स्तुति करते हैं, हमारी दी हुई हविको आप सुगन्धयुक्त करके देवताओंके लिये ले जायँ। आप पितरोंकी स्वधाके सहित हवि प्रदान करनेवाले हैं। वे पितर आपके द्वारा दी हुई उस हविको खायँ और हे अग्निदेव! आप भी हमारे द्वारा दी हुई हविको खाइये।'

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या॥
(७।१०९।२)

'हे अग्निदेव! आप अप्सराओंके लिये घृत ले जायँ तथा गणोंके लिये शक्कर और जल ले जायँ। अपने-अपने भागके अनुसार दोनों प्रकारकी प्राप्त हविको खानेवाले देवतागण संतुष्ट होंगे।'

इस प्रकारके बहुत प्रमाण वेदोंमें जगह-जगह भरे पड़े हैं। पत्रमें अधिक लिखना कठिन है।

अथर्ववेद, काण्ड १८, सूक्त ३ के मन्त्र १२ में मित्रा-वरुण आदि देवताओंके नाम; मन्त्र १५-१६ में कण्व, जमदग्नि आदि १२ ऋषियोंके नाम तथा उनसे प्रार्थना; १४में पितरोंका विसर्जन तथा बुलानेपर पुनः आनेके लिये प्रार्थना, हविसे तृप्त होनेका कथन—इस प्रकारकी बहुत-सी बातें वेदमें हैं।

यदि कोई कहे कि यह सब जीवित पिता-पितामहोंके विषयका वर्णन है तो देखिये—

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥
(१८।२।३४)

'हे अग्ने! जो पितर गाड़े गये हों, जो जंगलमें रख दिये गये हों, जो जला दिये गये हों, अथवा जो फेंक दिये गये हों, उन सबको तुम हवि-भक्षण करनेके लिये बुला लाओ।'

(४) शंकर भगवान्‌की पूजाका प्रकरण वेदमें बहुत जगह है। 'लिङ्ग' शब्दका अर्थ प्रतीक या चिह्न है, उपस्थ-इन्द्रिय नहीं। पूजा प्रतीककी ही होती है। कोई भी देवता प्रत्यक्ष स्थूल रूपसे प्रकट हो जाय और उसकी पूजा की जाय—ऐसा होना तो बहुत कठिन है। प्रतीकमें उनका आवाहन किया जाता है, भावसे उनका आगमन मानकर पूजा की जाती है और वह देवता उस पूजासे प्रसन्न होता है; क्योंकि देवता भावग्राही होते हैं। इस प्रकारकी पूजा करनेका विधान वेदोंमें भरा पड़ा है। इन्द्र, वरुण, प्रजापति, क्षेत्रपाल, शिव, विष्णु, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार आदि सभी देवताओंकी पूजाका जगह-जगह वेदमें वर्णन है।

(२)

प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप सत्सङ्गमें न आ सके, इसमें अपने भाग्यका दोष नहीं मानना चाहिये, प्रत्युत इसमें भी प्रभुकी कृपाका अनुसंधान करके सत्सङ्गके प्रति प्रेमकी वृद्धि हो, ऐसा भाव रखना चाहिये तथा आजतक सत्सङ्गमें जितनी बातें सुनी और समझी हैं, उनके अनुसार अपने जीवनमें जो-जो कमियाँ हैं, उनको दूर करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। अपने साधनमें किसी प्रकारके अभावका रहना सहन नहीं होना चाहिये। सुखके प्रलोभनमें आकर और दुःखके भयसे उन कमियोंका पोषण नहीं करना चाहिये।

महापुरुषोंकी और प्रभुकी कृपाका लाभ तो कोई भी उसे स्वीकार करके तथा उसका आदर करके अर्थात् उसकी अवहेलना न करके उठा सकता है। अपने मनकी बात पूरी करने और दूसरोंसे पूरी करानेका आग्रह छोड़ देनेपर महापुरुषोंके और प्रभुके अनुकूल हो जानेमें कोई कठिनाई नहीं रहती।

भगवान्‌की निरन्तर स्मृति तो उनमें प्रेम होनेपर ही हो सकती है। दृढ़ विश्वासपूर्वक प्रभुको अपना मानना चाहिये। तथा दूसरे किसी भी व्यक्ति या पदार्थकी तो बात ही क्या, इस शरीरको भी अपना नहीं मानना चाहिये; तब भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

एक साधक दूसरे साधकसे साधनके विषयमें बातचीत करे—यह बहुत लाभकी बात है। इसमें दोनोंका ही हित है। ऐसा विचार-विनिमय परस्पर उन साधकोंको अवश्य करना चाहिये, जिनकी प्रकृतिका और साधनका मेल हो, जिनमें परस्पर हितकी भावना हो तथा आपसमें संकोच न हो। परंतु बातचीत करते समय अपनी-अपनी कमीको सामने रखकर बात करनी चाहिये तथा उनकी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्तिका उपाय सोचना चाहिये । अपने गुणोंका प्रकाशन करना हितकर नहीं होता । प्रभुकी कृपाके महत्त्वको व्यक्त करनेके लिये अपनी जिन-जिन अच्छाइयोंको कहना आवश्यक हो, उन्हें कहा जा सकता है; पर कहीं भी उसमें अभिमान नहीं आना चाहिये ।

भगवान्‌ने गीतामें अध्याय १२ श्लोक १३ से अध्यायकी समासितक अपने प्रिय भक्तोंके लक्षण बताये हैं । वैसा बन जाना ही प्रभुका और महापुरुषोंका प्रिय बनना है । अतः उस प्रकारके जीवनमें जो-जो कमियाँ अपनेमें प्रतीत हों, उनको दूर करते रहना चाहिये ।

महापुरुषोंको अपना सब कुछ समझनेका भाव पहले स्पष्ट समझ लेना चाहिये । महापुरुष हाड़-मांसके शरीरका नाम नहीं होता । वह उस अनन्त विज्ञानस्वरूप प्रभुका ही रूप है, उससे भिन्न नहीं है । अतः भगवान्‌को अपना सब कुछ समझना ही महापुरुषको अपना सब कुछ समझना है । ऐसा समझ लेनेके बाद भगवान्‌का भजन-स्मरण नहीं करना पड़ता, अपने आप होता है, छूट ही नहीं सकता । भजन-स्मरण ही उसका जीवन बन जाता है; उसको ऐसा भास भी नहीं होता कि मैं भजन-स्मरण करता हूँ । अतः वह आज्ञानुसार भजन-स्मरणकी चेष्टा करनेवालेकी अपेक्षा उनकी कृपाका अधिक लाभ उठा रहा है, ऐसा कहा जा सकता है । शेष भगवत्कृपा ।

कैसी बीती ?

(लेखक—श्रीअगरचंदजी नाहटा)

ठीक संध्याका समय है । मन्दिरोंमें आरतीकी झालरें बजने लगी हैं । पक्षी मीठा कलरव करते हुए अपने-अपने घोंसलेकी तरफ आने लगे हैं । बाहर चरने गये हुए पशु हर्ष-विभोर हो गाँवकी तरफ आ रहे हैं । अब एक-आध घंटेमें सूर्य अस्त होनेवाले हैं ।

इतनेमें एक महात्मा घूमते-घूमते श्यामपुर गाँवमें आ ठहरे । पास ही एक हलवाईकी दूकान है । महात्मा हलवाईके पास गये और उन्होंने हलवाईके यहाँ रात्रि व्यतीत करनेकी इच्छा प्रकट की । हलवाई—'महात्माजी ! आप खुशीसे पधारिये, आप-जैसे महात्माओंके चरणोंसे मेरा आँगन पवित्र हुआ । आज मैं धन्य हो गया ।'

महात्माने हलवाईकी दूकानके एक कोनेमें बैठ अपना संध्या-वन्दन किया, आवश्यक क्रिया सम्पन्न की और प्रभु-स्मरणकर आत्मचिन्तन करने लगे । अन्तमें सब जीवोंसे क्षमा-याचनाकर रातके बारह बजे जमीनपर हाथका तकिया बना (हाथ सिरके नीचे रखकर) सुखपूर्वक मीठी निद्रामें सो गये ।

हलवाईकी दूकानके सामने ही राजाका महल था । झरोखेमें खड़े राजाकी दृष्टि हलवाईकी दूकानकी ओर गयी । वहाँ उन्होंने एक महात्माको देखा । अत्यन्त सादे और जीर्ण वस्त्र पहने, पृथ्वीपर सोये महात्माको देख राजाने सोचा—'यह कोई गरीब भिक्षुक है । बेचारेके खाने-पीने और सोनेतकका ठिकाना नहीं । सो मैं सवेरे इसे अपने पास बुलाकर, इसे जो भी चाहिये, देकर सुखी करूँगा । मेरे पास बहुत सम्पत्ति है; मेरा कर्तव्य है कि मैं गरीबोंके दुःखकी तरफ देखूँ ।'

राजा ऐसा विचार करते-करते रात्रिके बारह बजेके पश्चात् फूलोंकी सेजपर सो गये और निद्रामें लीन हो गये ।

रात्रि बीती, प्रभात हुआ । पक्षियोंका प्रातःगान शुरू हुआ । भक्तजनोंने भगवान्‌की विरुदका बखान शुरू किया, राजा जागे । प्रातःकालीन नित्य-नैमित्तिक कर्मोंसे निवृत्त होकर एक सैनिकको आदेश दिया—'जाओ, सामने हलवाईकी दूकानमें पिछली रात एक महात्मा आये हैं, उन्हें बुला लाओ ।' 'जी, सरकार !' कहकर सैनिक चला गया और महात्माके पास जाकर विनीत शब्दोंमें बोला—'आपको राजा साहब बुला रहे हैं ।' यह जानकर महात्माने शान्तभावसे कहा—'भाई ! राजाको मुझसे क्या काम है ?'

सैनिक—'महात्मन् ! राजा क्यों बुला रहे हैं, यह तो मुझे ज्ञात नहीं । हमारे-जैसे महान् राजा आपको बुला रहे हैं, यह आपके सौभाग्यका सूचक अवश्य है ।'

यह सुनकर महात्माके मनमें थोड़ी हँसी आयी; फिर गम्भीर मुद्रामें राजाकी ओर चले ।

महात्माको अपनी तरफ आते देख राजा बोले—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'पधारिये, महाराज ! रात कैसी बीती ?' महात्माने निर्भयतापूर्वक जवाब दिया—'आधी आप-जैसी और आधी आपसे अच्छी !' यह सुनकर राजाको आश्चर्य हुआ । राजा—''महात्मन् ! थोड़ा विचार करके बोलिये । आपके लिये सोनेका तो उपयुक्त स्थान भी नहीं था—एक तरफ राखकी ढेरी और दूसरी तरफ मिठाई बनानेकी कड़ाही । आप हाथका तकिया लगाये जमीनपर तो सो रहे थे और शरीरपर चूहे उछल-कूद कर रहे थे । ऐसी अवस्थामें तो आप सो रहे थे । फिर आप कह रहे हैं, 'आधी आप जैसी और आधी आपसे भी अच्छी ।''

महात्मा—'सुनिये, राजन् ! जरा स्वस्थ होइये, क्रोध न करें । मैं आपसे पूछता हूँ, आप कितने बजे सो गये थे ?'

राजा—'महात्माजी ! बारह बजनेके पश्चात् ।'

तब महात्मा बोले—'राजन् ! मैं रातको बारह बजे सो गया था । अब आप कहिये, रात बारह बजनेके पश्चात् आप और मैं दोनों निद्रास्थ हो गये और निद्रास्थ होनेके पश्चात् जमीन और फूलोंकी सेजमें क्या अन्तर रह जाता है ?'

राजा—'हाँ ! हैं तो दोनों एक-जैसे ।'

महात्मा—'तो राजन् ! बारह बजेके पश्चात्की रात तो आपकी और मेरी एक-सी हो गयी । बारह बजनेके पहले आपने क्या-क्या किया ?'

तब राजाने कहा—'महात्मन् ! मुझे बारह बजेसे पहले बहुत काम थे । दूसरेके राज्यपर चढ़ाई करनेके सम्बन्धमें प्रधान मन्त्रीके साथ विचार-विमर्श किया । खजाना पूरा है या नहीं, यह खजानचीसे पूछा—फिर खजाना पूरा करनेके लिये खजानचीको आज्ञा दी । कोई रानी अप्रसन्न हो गयी थी, उसे प्रसन्न किया । इसके अतिरिक्त राजकुमारोंके सम्बन्धमें बातचीत करने आदि कार्योंमें बारह बज गये ।'

यह सुनकर महात्माने कहा—''राजन् ! मैंने बारह बजेसे पहले क्या किया, सुनो ! मैंने संध्या-वन्दन किया । भगवान्का स्मरण किया । समस्त जीवोंसे क्षमा-याचना की, आत्म-चिन्तन कर अपना समय शुभ काममें बिताया और आपने राज्यके झगड़े और खटपटकी बातें कीं । इसीसे मैंने आपसे कहा—'आधी रात्रि तो आप-जैसी ही मेरी गयी और आधी आपसे अधिक अच्छी । बोलिये, यह मेरी बात सत्य है या नहीं ?'

यह सुनकर राजा बोले—'महात्मन् ! क्षमा करिये । आपकी बात सत्य है । आपने आज मेरा अज्ञान दूर कर दिया''''सच्चा आनन्द त्यागमें है, भोगमें नहीं, यह मैंने आज ही सीखा है । आप कोई दुखी भिक्षुक नहीं हैं—आप तो महान् आत्म-सम्पत्तिके मालिक हैं, जब कि मैं इतनी-इतनी धन-सम्पत्ति होते हुए भी अत्यन्त गरीब और क्षुद्र हूँ ।'

महात्माके चेहरेपर अद्भुत कान्ति और प्रसन्नता देख राजाने उन्हें नमस्कार किया और क्षमा माँगी ।

तुझमें है अटूट धन

दरिद्रीको रोता देख
योगी एक बोला यों—
'तेरे ही घरके कोनेमें
चरवा एक सोनेका ।'
सुनकर खुश हुआ वह,
जाकर खोदा वहाँ ।
पहले तो मिट्टी पायी,
बाद मिला घड़ा वह ।

सद्गुरु उपदेश दे—
'तुझमें है अटूट धन,
मत डर उपसर्गोंसे ।
बैठ जा, ध्यान कर,
आत्मतत्त्व खोज ले ।
छोड़ दे कंकर-मिट्टी ।
उद्यमके बिना नहीं
होगी कभी भी सिद्धी ।'

—मोतीलाल सुराना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महात्मा सेरफिम

(लेखक—श्रीरामलालजी बी० ए०)

संत सदाचार और सत्य-विचारके धनी होते हैं। वे समस्त विश्वके नागरिक होते हैं और सभी लोग समान-रूपसे उनके निष्पक्ष आचार-विचारसे लाभ उठाते हैं। महात्मा सेरफिम इसी तरहके उच्चकोटिके संत थे। 'सेरफिम' शब्दका आशय है—विना जीवनमें उतार-चढ़ावकी चिन्ता किये परमात्माके भजनमें सदा लगे रहनेवाला। महात्मा सेरफिम निस्संदेह सेरफिम ही थे। वे शान्तिके देवदूत थे, उन्हें एकान्तमें रहकर आत्मसाधनामें लगे रहना बड़ा अच्छा लगता था।

संत सेरफिमने १७५९ ई० में १९ जुलाईको रूसमें जन्म लिया था। उनके माता-पिता बड़े सदाचारी और धार्मिक प्रवृत्तिके थे। इसलिये उनका पालन-पोषण पवित्र संस्कारोंके वातावरणमें हो सका। जब वे केवल तीन सालके थे, उनके पिता चल बसे। उनकी मा अगाथाने उनका पालन-पोषण किया। सेरफिमको सात सालकी अवस्थामें मा उन्हें उपासना-घर ले गयी। उपासना-घरमें एक ऊँचे स्थानपर घंटा लगा था। सेरफिम उसे देखते-देखते छतपर इतने किनारे चले गये कि जमीनपर गिर पड़े, पर उन्हें चोट नहीं आयी। उन्होंने कहा कि 'स्वर्गकी देवीने मुझे अपने आँचलमें छिपा लिया था। मैं उसके साथ उड़कर नीचे आ गया।' निस्संदेह वे परमात्मा-की कृपासे बच गये।

उन्होंने अपना जीवन लोगोंकी सेवामें लगा दिया। उन्नीस सालकी अवस्थामें सारव मठमें प्रवेश कर उन्होंने कठोर सेवाव्रत अपना लिया; उन्हें जो काम सौंपा गया था, उसे बड़ी लगन और सावधानीसे करते थे। लोगोंके लिये भोजन बनाते थे, बढ़ईका काम करते थे, उपासनाके समयकी सूचना देनेवाला घंटा बजाते थे, उपासना-संगीतमें लोगोंका साथ देते थे, लोगोंके कपड़े सिलते थे तथा जलानेके लिये जंगलसे लकड़ी काटकर लाया करते थे। वे कहा करते थे—'आज्ञा माननेसे बड़ा दूसरा कोई काम नहीं है। यह उपवास और प्रार्थनासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। विना किसी अशान्ति और चिड़चिड़ाहटके हमें सब तरहका दुःख सह लेना चाहिये। साधु वह है, जो दूसरोंद्वारा उकसाये जानेपर भी शान्त और सहनशील बना रहता है।'

वे अपना समय एकान्त-सेवनमें सार्थक करते थे। वे सारव मठके निकट ही जंगलमें जाकर आत्मसाधना किया करते थे; उनके लिये उसी जंगलमें एक झोंपड़ी बना दी गयी थी। दिनमें वे मठमें रहकर लोगोंकी सेवा किया करते थे और शाम होते ही जंगलवाली झोंपड़ीमें आकर परमात्माकी उपासना और आराधनामें सारी रात लगे रहते थे।

चौंतीस सालकी अवस्थामें सेरफिम तैम्बव मठमें भेज दिये गये। उन्हें मठकी ओरसे जंगलमें शान्तिपूर्ण ढंगसे साधना करनेकी स्वतन्त्रता दे दी गयी। उनके जीवनने कठोर तप अपनाया। झोंपड़ीमें खानेका थोड़ा-सा सामान था, एक चूल्हा था। यही उनकी सम्पत्ति थी। जाड़ेमें वे लकड़ी काटकर रातको जलाते थे और अपनी झोंपड़ी गरम रखते थे; गरमीके दिनोंमें साग-सब्जी पैदाकर जीविका चलाते थे। मच्छड़ उन्हें बहुत परेशान करते थे; मच्छड़ोंके काटनेसे कभी-कभी उनका शरीर खूनके कणोंसे भर उठता था, पर वे केवल इतना ही कहा करते थे कि इन यातनाओंसे भोगमय जीवनकी कामनाएँ और विलासिताएँ शान्त हो जाती हैं; अपने आप दब जाती हैं। कभी-कभी काम करते-करते उनका मन परमात्माके चिन्तनमें इस तरह तल्लीन हो जाता था कि काम करनेके यन्त्र हाथसे अपने आप छूटकर जमीनपर गिर पड़ते थे और वे समाधिस्थ हो जाते थे। उनके चेहरेपर दिव्य तेज दीख पड़ता था।

मठ और उनकी झोंपड़ीके ठीक आधे रास्तेपर एक बड़ा-सा गोल चिकना पत्थर था। वे रोज रातको पत्थरके सामने जाकर खड़े हो जाते थे या घुटनोंके बल झुककर दोनों हाथ ऊपर उठाकर परमात्मासे प्रार्थना किया करते थे, 'हे परमेश्वर! मुझ जैसे पापीपर कृपा कीजिये।' दिनमें अपनी झोंपड़ीके दरवाजेपर एक बड़ा पत्थर रखकर उसे बंद कर देते थे और भीतर एकान्तमें बैठकर परमात्माका भजन किया करते थे। इस तरह उन्होंने निरन्तर एक हजार रात और एक हजार दिनतक भजन किया, पर उन्हें ऐसा करते कोई भी नहीं देख सका।

संत सेरफिम आजीवन आध्यात्मिक रहस्योंकी खोज करते रहे। वे मौन रहा करते थे और आवश्यक वस्तुके लिये संकेतसे ही काम चला लिया करते थे। उनकी दिव्य शक्तिसे खिंचकर जंगली जानवर उनके वशमें हो जाया करते थे और अभय होकर उनकी झोंपड़ीके आसपास घूमा करते थे। एक दिन एक पेड़के तनेपर बैठकर वे एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जंगली भालूको सूखी रोटी खिला रहे थे। पीटर नामके एक व्यक्तिने उनको ऐसा करते देख लिया। सेरफिम संकोचमें पड़ गये। वे प्रचार और प्रसिद्धिसे दूर रहते थे। उन्होंने पीटरसे निवेदन किया 'कि मेरे जीवित रहते इस बातकी जानकारी किसीको भी न होने पाये।'

संत सेरफिम गलत रास्तेपर चलनेवालोंको सही रास्तेपर चलनेका उपदेश देते थे। एक दिन वे अपने हाथसे मठके कामके लिये नरकट उखाड़ रहे थे। उन्होंने एक आदमीको अपने सामने खड़ा देखा। वह अपने बाल-बच्चों तथा परिवारके लोगोंको छोड़कर तीर्थयात्रा कर रहा था। उसने सोचा था कि ऐसा करनेसे परमेश्वर प्रसन्न होंगे। महात्मा सेरफिमने उसको समझाया कि 'स्त्री तथा बाल-बच्चोंको घरपर असहाय छोड़कर इस तरह परमात्माको प्रसन्न करनेकी भावना भ्रममात्र है। आप घर जाइये, घरके लोगोंको दयनीय हालतमें छोड़कर तीर्थोंमें घूमनेसे परमात्माकी कृपा नहीं मिला करती। घर जाकर गल्लेकी दूकान कीजिये, परिवारका पालन-पोषण कीजिये; यही परमात्माकी पूजा है।'

एक समयकी बात है। जॉन नामके एक नवदीक्षित व्यक्तिने महात्मा सेरफिमसे कहा कि 'मैं अपने हाथोंमें जंजीर बाँधना चाहता हूँ, शरीरपर जानवरके बालसे बना एक पहनावा रखना चाहता हूँ; मुझे व्रतमें सफल होनेका आशीर्वाद दीजिये।' महात्मा सेरफिमने समझाया कि 'जबतक मन संयत न हो जाय, सहनशीलता और तितिक्षाका अभ्यास दृढ़ न हो जाय, तबतक वैराग्यका उदय नहीं होता।' उन्होंने जॉनके कान ऐंठकर कहा कि 'बाहरी वेश-भूषाका कोई महत्त्व नहीं है। यदि आपको कोई कनेठी लगाये तो समझना चाहिये कि यही सबसे बड़ी जंजीर है, यह लोहेकी जंजीरसे कहीं अधिक गुणकारी है।' महात्मा सेरफिम जॉनकी ओर बढ़े, ऐसा भाव प्रकट किया कि मानो उसके चेहरेपर थूकना चाहते हैं। संतने कहा कि 'यदि आपके मुखपर कोई इस तरह थूकता है और आप सह लेते हैं तो समझना चाहिये कि यही सबसे अच्छा पहनावा है। इससे मनमें सहज दैन्यका उदय होता है। तपका फल मनोनिग्रह है।' जॉनकी आँख खुल गयी।

महात्मा सेरफिमकी कृपासे मोटोविलोव नामके एक व्यक्ति परमात्माके भक्त बन गये। एक दिनकी बात है।' बड़े जोरका हिमपात हो रहा था। भयानक ठंढ थी। चारों ओर कोहरेसे अँधेरा छाया था। मोटोविलोव एक पेड़की डालपर बैठे थे। उनके ठीक सामने दूसरी ओर संत सेरफिम थे। सेरफिमने कहा—'परमात्माकी प्रेम-प्राप्ति ही मानव-जीवनका वास्तविक लक्ष्य है। इस तरहकी दिव्य प्रेम-प्राप्ति परमात्माकी प्रार्थनासे सम्भव है। सदा अपने-आपसे प्रश्न करना चाहिये कि मैं परमात्माके प्रेममें स्थित हूँ या नहीं।'

मोटोविलोवने कहा कि मैं 'आपकी बात नहीं समझ सका।' संतने कहा कि 'हम दोनों ही इस समय परमात्माकी प्रेममयी सत्तामें स्थित हैं। मेरी ओर देखिये।' मोटोविलोवने कहा कि 'मैं आपकी ओर नहीं देख सकता। आपकी आँखोंमें अद्भुत तेज है। आपका चेहरा सूर्यसे भी अधिक प्रकाशमय है। आपसे आँख मिलानेमें मेरी आँखोंमें पीड़ा होती है।' महात्माने समझाया कि 'डरना नहीं चाहिये। आप मेरी ही तरह दिव्य प्रकाशसे भर उठे हैं। आप परमेश्वरके प्रेममें स्थित हो गये हैं।' मोटोविलोवने देखा कि संतके चारों ओर दिव्य प्रकाश-मण्डल है। संतने कहा कि 'यही दिव्य परमात्मभावकी स्थिति है, इसमें आत्मा चिन्मय आनन्दमें विभोर हो उठता है।'

मोटोविलोवने कहा कि 'मैं इतना आनन्दमग्न हूँ कि मुझे अपने भीतर बड़ी गरमी लग रही है। साथ-ही-साथ बड़ी मादक स्वच्छ गन्धकी प्रतीति हो रही है।' संत सेरफिम-ने समाधान किया—'यह सच है कि बाहर अधिक ठंढ है, हिमपात हो रहा है; पर दिव्य परमात्मभावसे अभिभूत होनेके नाते हम दोनोंको गरमी लग रही है और इस दिव्य गन्धकी तुलना धरतीपर पायी जानेवाली मधुरतम गन्धसे भी नहीं हो सकती।'

संत सेरफिमने पवित्र संदेश दिया, 'आप अपने भीतर शान्तिका अनुभव कीजिये, सारा संसार आपके पीछे-पीछे चलेगा। विनम्रता ही जीवनकी आधारशिला है, इससे परमात्माकी कृपा मिलती है।'

महात्मा सेरफिमका आध्यात्मिक सिद्धान्त यह था कि 'परमात्मासे ही प्रेम करना चाहिये, उन्हींको जानना और समझना चाहिये। वे हमारा साथ कभी नहीं छोड़ते।' उन्होंने कहा—'शब्दोंके द्वारा दूसरोंका प्रतिरोध करनेसे कलह होता है और भीतर-ही-भीतर दूसरोंकी प्रतिरोध-भावना पी जाने या पचा लेनेसे आत्मशान्ति मिलती है।'

जीवनके अन्तिम समयमें महात्मा सेरफिमके हृदयमें आत्मशान्ति भर उठी। संत लोगोंने उनके माध्यमसे दिव्य परमात्मभावका रसास्वादन किया। वे सरलता और विनम्रताकी सजीव मूर्ति थे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके अन्तिम उपदेश

[गताङ्क पृष्ठ १००८ से आगे]

'कल्याण'के पिछले अङ्कमें हमने देखा कि किस प्रकार असह्य पीड़ा एवं सर्वथा लाचारीकी स्थितिमें भी परम श्रद्धेय श्रीभाईजीने सर्वथा निश्चल, निर्विकार, शान्त एवं प्रफुल्लित रहकर अपने आचरणके द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि पीड़ा शरीरमें होती है, आत्मा उससे सर्वथा अप्रभावित है। साथ ही वे अपनी वाणीद्वारा इस संदेशको विश्व-ब्रह्माण्डके वायु-मण्डलमें प्रसारित करते रहे।

श्रीभाईजीके भौतिक कलेवरका भगवान्के विधानानुसार अब अवसान होना था। अतएव शरीर उस ओर अग्रसर हो रहा था। कोई भी उपचार सफल नहीं हो पा रहा था। भौतिक साधन तभी सफल होते हैं, जब उनकी सफलता भगवान्के विधानके अनुसार अभिप्रेत होती है। भगवान्के विधानके प्रतिकूल जगत्की किसी भी शक्तिका कोई भी प्रयत्न कारगर नहीं हो सकता। पर अन्तिम श्वासतक सात्त्विक प्रयत्न करते रहना शास्त्र एवं संतोंके आदेशानुसार कर्तव्य है।

श्रीभाईजीकी शारीरिक स्थितिमें जब कोई सुधार लक्षित नहीं हो रहा था, तब स्थानीय डाक्टर महानुभावोंके आग्रहसे गोरखपुरसे बाहरके योग्य डाक्टर महानुभावोंको बुलाया गया। २६ फरवरीको कानपुर मेडिकल कालेजके सर्जरीके प्रोफेसर डा० ताराचन्दजी विशुद्ध आत्मीयताके नाते श्रीभाईजीको देखनेके लिये पधारे। डा० ताराचन्दजी श्रीभाईजीका निरीक्षण करनेपर चिन्तित हो उठे। वे रोगकी भीषणतासे परिचित थे। उन्होंने बड़े गम्भीर एवं चिन्तित स्वरमें अपनी अनुभवयुक्त राय दी—'तत्काल ऑपरेशन किया जाना चाहिये, अन्यथा जीवनको खतरा है। इतना गम्भीर ऑपरेशन यहाँ होना सम्भव नहीं। बाहर जाना चाहिये।' डाक्टर साहबकी राय सुनकर घरवाले, स्वजन एवं स्थानीय डाक्टर महानुभाव—सभी घबरा गये। प्रायः सभी ऑपरेशनपर जोर देने लगे। बाहर जानेका निश्चय तत्काल होना चाहिये, सब ओरसे यही माँग आने लगी। सबकी भय एवं चिन्तासे अभिभूत मनःस्थिति देखकर श्रीभाईजीने डा० चक्रवर्ती महोदयको अपने पास बुलाकर धीरेसे कहा—'मेरी शरीरमें आस्था नहीं है। शरीर जब जाना होगा, जायगा। कर्तव्य है कि जबतक शरीर है, तबतक इसकी सँभाल करनी चाहिये।' पीछे श्रीभाईजी बँगलामें बोलने लगे—

'आमार शरीरेर सङ्गे सम्बन्ध रयेछे बलिया वेदनार बोध हय। जखन शरीरेर सङ्गे आमार सम्बन्ध थाके ना, तखन व्यथा अनुभव करिबार प्रश्नई उठे ना।'

—हमारा जब शरीरके साथ सम्बन्ध रहता है, तब वेदनाका बोध होता है; पर जब शरीरसे अपनेको पृथक् अनुभव करता हूँ, तब कष्टके अनुभवका प्रश्न ही नहीं रहता। पर यह बात आपसे कहनेमें संकोच नहीं है; कारण, आप श्रीरामकृष्ण परमहंसके भक्त हैं। बाहर जानेपर वहाँके स्वजनों एवं डाक्टरोंके सामने यह बात कहनेमें हमें संकोच होगा।

'निजे एक टु अभिमान व्यक्त न होय,
डाक्टरेर अपमान ना होउक'।

—अपनेमें तनिक भी अभिमान व्यक्त न हो तथा डाक्टर महानुभावोंका भी अपमान न हो—इसपर खयाल रखना है। मेरे उपर्युक्त कथनमें लोगोंको अभिमान दीखेगा और डाक्टर महानुभाव अपना अपमान मानेंगे कि हमारे चिकित्सा-विज्ञान-सम्मत परामर्शको ये लोग भावुकतावश अस्वीकार कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त रोगीके शरीरकी लाचारीकी स्थितिमें आवश्यक उपचार करना डाक्टर महानुभावोंका कर्तव्य है। हम अपने सिद्धान्तकी दृढ़तासे डाक्टर महानुभावोंके आवश्यक उपचार करनेके मार्गमें बाधा उपस्थित करके उन्हें कर्तव्यच्युत करें—हमें इस बातका भी संकोच है।'

इस प्रकार अपने सिद्धान्तकी रक्षाके साथ दूसरेके कर्तव्य पालनका इतना ध्यान इस लाचारीकी स्थितिमें भी श्रीभाईजी रख रहे हैं—यह देखकर डा० चक्रवर्तीकी आँखें सजल हो उठीं।

श्रीभाईजीने आगे कहा—"भगवान्पर विश्वास करके अपनी जो मान्यता है, सिद्धान्त है, उसके अनुसार इलाज किया जाय। किसीका तिरस्कार न हो जाय—मुझे यह संकोच बना है। बाहर जानेपर हमारा संकोच और बढ़ेगा। वहाँ डाक्टरोंने परिस्थितिकी गम्भीरताको समझकर कोई बात कही,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हम उसे न मान पाये तो उनका तिरस्कार होगा । वे लोग इनसुलिन-जैसी अशुद्ध, अपवित्र, हिंसायुक्त औषध देंगे; सब लोग कहेंगे—'शरीर बचाना धर्म है, पीछे प्रायश्चित्त कर लिया जायगा ।' इस प्रकार अशुद्ध औषध सेवनकर पीछे प्रायश्चित्त करनेकी बात छोड़िये । वह हमें किसी भी रूपमें मान्य नहीं है । इन सभी कारणोंसे बाहर जानेमें हम हिचकते हैं ।

पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हम ऑपरेशनसे डरते हैं । ऑपरेशन करानेमें हमें कोई डर नहीं है । ऑपरेशन करानेवाले बहुत लोग अच्छे होते हैं; हमारा रोग अच्छा नहीं होगा, कौन कह सकता है । अच्छा होना होता है तो हो जाता है, नहीं होना होता तो नहीं होता । चिकित्सा कर्तव्य है, करनी चाहिये; पर दवा रोगीको बचा नहीं सकती । इसके अतिरिक्त हम जानते हैं, शरीरसे हमारा सम्बन्ध नहीं; शरीरकी बीमारीसे आत्मा बीमार नहीं होता—यह मरेगा नहीं और शरीर जबतक है, तबतक यह बीमार है, रहेगा—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥
(गीता २ । १३)

'जैसे जीवात्माकी इस देहमें बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती हैं, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है ।' ये सब बातें जीवनभर कही हैं, पढ़ी हैं, लिखी हैं; ये सब अपने लिये नहीं हैं क्या ? वास्तवमें हमलोगोंको मोह हो गया है । नाम-रूपको लेकर हमने मान लिया है कि 'मैं देह हूँ' और अपनेको बीमार अनुभव करने लगे हैं । न 'यह' देह है, न 'यह' बीमार है ।''

डा० चक्रवर्ती महोदयने श्रीभाईजीके इन शब्दोंको सुनकर आत्मविभोर हो गये ।

उसी सायंकाल घरवालों, डाक्टरों एवं स्वजनोंके सामने प्रातःकालके प्रसङ्गको दोहराते हुए श्रीभाईजीने बोलनेकी शक्ति क्षीण होनेके कारण बीच-बीचमें विराम लेते हुए कहा—'हम बाहरवालोंके समक्ष भी अपने सिद्धान्तपर दृढ़ रह सकते हैं, पर उसमें उनके तिरस्कार होनेका मनमें संकोच है ।'''''पीड़ा शरीरमें है । जब हम उसे स्मरण नहीं करते, तब पीड़ा अनुभव नहीं होती । अभी हमारे पेटमें बहुत दर्द था और है; पर जबतक आपलोगोंसे बात की, तबतक उसका कुछ भी अनुभव नहीं रहा, दर्दको भूले रहे । बाहर जानेपर बाहरके डाक्टरों—मित्रोंका तिरस्कार न हो जाय, हमें इसीकी विशेष चिन्ता है ।'''''इसके अतिरिक्त हमारे मनमें आता है कि बाहर जानेकी बात तभी होती है, जब आपलोगोंके उपचारसे लाभ न हो; पर आपलोगोंके विशुद्ध प्यारसे भरे हृदयमें तो भगवान् प्रकाश नहीं देंगे, बम्बई-कलकत्ताके बड़े-बड़े डाक्टर, जो पैसेको प्रधानता देकर आयेंगे तथा सब काम करेंगे, उनको भगवान् प्रकाश देंगे—यह तो केवल आस्तिकताका जनाजा है—उपहास है ।'''''जगत्की दृष्टिसे जो अच्छे-से-अच्छे साधन उपलब्ध हों, उनको किया जाय; पर विश्वास भगवान्के मङ्गलविधानपर रहे ।'''''हमारा विचार तो निश्चित है—किसी भी हालतमें इनसुलिन नहीं लेना है, चाहे प्राण रहें या जायँ ।

× × × ×

रोग सुरसाकी भाँति अपना रूप-विस्तार करता जाता था और उसके विकराल रूपको देखकर डाक्टर महानुभाव चिन्तित होते जा रहे थे । २७ फरवरीको दिल्लीके प्रसिद्ध सर्जन डा० मेहरा श्रीभाईजीको देखनेके लिये पधारे । उन्होंने भी परिस्थितिकी गम्भीरताको समझकर अपनी राय दी—'ऑपरेशन करानेसे आशा है कुछ लाभ हो । पर रक्तमें शर्करा (Sugar) बढ़ी हुई है, इससे इनसुलिनकी आवश्यकता पड़ सकती है । ऑपरेशन करनेके पश्चात् घाव यदि नहीं भरा तो श्रीभाईजीकी जीवन-रक्षाके लिये छिपाकर भी इनसुलिन देना पड़ सकता है ।' इसपर श्रीभाईजीने दृढ़ताके साथ कहा—''इनसुलिन'का प्रयोग करके मैं अपना जीवन नहीं बचाना चाहता । जीवन तो एक दिन जायगा ही । फिर किसी प्राणीकी हिंसासे बने 'इनसुलिन'को लेकर इसे बचानेका पाप क्यों स्वीकार किया जाय ?'' डाक्टर मेहरा श्रीभाईजीकी इस दृढ़ताको देखकर चकित रह गये । उन्होंने कहा—''भाईजी ! आपकी महानताका यही हेतु है कि आप सिद्धान्त-को जीवनसे श्रेष्ठ मानते हैं । अन्यथा हम जानते हैं कि बड़े-बड़े धार्मिक लोग 'इनसुलिन'का प्रयोग बिना किसी हिचकके बराबर कर रहे हैं ।''

× × × ×

उपचार चल रहा था, पर स्थितिमें सुधार होनेके स्थान-पर वह निरन्तर बिगड़ती जा रही थी । डाक्टर महानुभावोंकी चिन्ता बढ़ रही थी । उसे देखकर श्रीभाईजीने कहा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'देखिये, विपरीत स्थितिमें भगवान्पर विश्वास बढ़ता रहे, यही तो आस्तिकता है।……मैं अभी सोच रहा था कि व्यष्टि एवं समष्टिमें ऐसे अवसर आते हैं, जब चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार छा जाता है। जहाँ भी हाथ डालिये, निराशा, असफलता ही मिलती है। जिससे सुरक्षाकी आशा करते हैं, उससे पराभव प्राप्त होता है। इसी प्रकार शरीरकी ऐसी स्थिति हो रही है कि जो कुछ भी दिया जाता है, वह विपरीत फल दिखाता है। आपलोग अपनी समझसे पूर्ण सद्भावनासे उपचार कर रहे हैं। आपलोगोंके स्नेह-प्यारको देखकर मैं आपलोगोंका हृदयसे कृतज्ञ हूँ। प्यार-स्नेहका बदला नहीं दिया जा सकता। भगवान् उसका बदला देते हैं। आपलोग विश्वास रखें, यह भगवान्का विपरीत रूप है; भगवान्का भयानक रूप भी होता है। मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ। जब कष्ट अधिक होता है, तब उसका अनुभव होता है; पर मेरे मनमें चिन्ता नहीं है। अपने कर्तव्यमें कमी नहीं करनी चाहिये। अभी रोग और बढ़ सकता है—मस्सा हो सकता है, बीकोलाई (B-coli) हो सकती है। जब राजा कमजोर होता है, तब छोटे-छोटे शत्रु भी सिर उठाने लग जाते हैं। ऐसी ही इस शरीरकी दशा हो रही है। वह अत्यधिक कमजोर हो गया है। अतएव नये-नये रोग प्रकट हो रहे हैं। आपलोग चिन्ता न करें; जैसा होना है, होगा और उसमें मङ्गल ही होगा।'

× × × ×

रोगकी निरन्तर बढ़ती स्थितिको देखकर सबका चित्त बड़ा उदास रहने लगा; जो श्रीभाईजीके दर्शनार्थ आता, उसकी आँखें छलक पड़तीं। श्रीभाईजी इस अधीरताको कम करना चाहते थे, अतएव वे उद्बोधन करते हुए कहते—''भगवान्ने गीतामें कहा है—'जन्ममृत्युजराव्याधि-दुःखदोषानुदर्शनम्।' (१३।८)

—जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोग निरन्तर शरीरके साथ लगे हैं; इन सबको देखकर शरीरसे वैराग्य करना चाहिये।……संसारका अर्थ है—'संसरति इति संसारः।' अर्थात् जो गतिमान् है, चल रहा है, उसका नाम 'संसार' है। यहाँ कोई भी स्थिति स्थायी नहीं है। हमलोगोंका बचपन बीता, युवावस्था बीती; बचपनकी वे उमंगें, वे विचार मर गये; इसी प्रकार वृद्धावस्था भी मर जायगी। ''शरीरके प्रति 'मैं' तथा 'मेरापन' हो रहा है, इसीसे दुःख-सुख होते हैं। यह 'मैं-मेरापन' हटा कि फिर कुछ भी नहीं है।……बस, प्रतिकूलतामें, विपरीततामें, भगवान्पर विश्वास बना रहे, बढ़ता रहे—यह विश्वास कि जो हो रहा है, भगवान्के मङ्गलविधानसे ठीक हो रहा है।''

× × × ×

स्वजन, मित्र, डाक्टर महानुभाव रोगकी निरन्तर बढ़ती एवं गम्भीर होती हुई स्थितिमें भगवान्की मङ्गलमयताके दर्शन करनेमें अपनी असमर्थताका अनुभव कर रहे हैं, इस तथ्यसे श्रीभाईजी परिचित थे। अतः वे जब भी कुछ बोलने-की शक्ति अनुभव करते, इसी बातको दोहराते। ३ मार्चको अपने पुराने सहयोगी, स्वजन, बन्धु डॉ० भुवनेश्वरप्रसादजी मिश्र 'माधव'की आँखोंमें जब उन्हें अश्रुबिन्दु दिखायी दिये, तब उन्हें सान्त्वना देते हुए श्रीभाईजीने कहा—'प्रतिकूलतामें भगवान्की मङ्गलमयतापर विश्वास हो, तभी तो विश्वास है। शरीर रहे चाहे न रहे, उनसे यह न कहा जाय कि आप इस प्रतिकूलताको बदलिये।'

× × × ×

श्रीभाईजीके २६फरवरीके उपर्युक्त स्पष्टीकरणके बाद गोरखपुरसे बाहर जाकर ऑपरेशन करानेकी बात समाप्त हो गयी थी। पर बाहरसे डाक्टर बुलाकर परामर्श करनेका आग्रह सब ओरसे चल ही रहा था। ४मार्चको एक कैंसरके विशेषज्ञ महानुभावको बम्बईसे बुलानेकी चर्चा हुई। श्रीभाईजीको इस बातकी जानकारी हो गयी। वे घरवालोंसे बोले—'डाक्टरोंको बाहरसे क्यों बुला रहे हैं? वे लोग बाहरसे आयेंगे, वही बात बतायेंगे जो यहाँके डाक्टर महानुभाव बतला रहे हैं। बाहरसे डाक्टरोंको बुलानेमें जो रुपया खर्च कर रहे हो, वह गरीबोंकी सेवामें खर्च करना चाहिये।'

× × × ×

६मार्चको दर्दका भीषण दौरा आया। कई तरहके इंजेक्शन देनेके बाद लगभग एक घंटेमें दर्द कुछ शान्त हुआ। डा० लाहिड़ी महोदय आजके दर्दकी भीषणताको देखकर बहुत ही चिन्तित एवं व्यथित हो रहे थे। घरवालों एवं स्वजनोंकी आँखें बरस रही थीं। श्रीभाईजी इस गम्भीरताको कम करनेके उद्देश्यसे बोले—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'भगवान् कहते हैं'—

आमि तोमार कथा सुनिबो ना,
आमि तोमार कथा मानिबो ना,
आमि यथेच्छाचारी:
जा इच्छा होबे करिबो,
तातेइ तोमार कल्याण।'

'मैं तुम्हारी बात सुनूँगा नहीं, मैं तुम्हारी बात मानूँगा नहीं, मैं यथेच्छाचारी हूँ—जो मनमें आयेगा करूँगा और उसीमें तुम्हारा मङ्गल है। ××× भगवान् जो करते हैं, उसमें मङ्गल-ही-मङ्गल है। ××× आपलोग प्यारसे, सद्भावसे, हितदृष्टिसे जो कर रहे हैं, करते रहिये। वह सफल नहीं हो रहा है तो क्या; आपकी भावनाके कारण वह मङ्गलमय है। भावना ही किसी कार्यको शुभ-अशुभ रूप देती है। यज्ञ भी किया जाय तो वह अशुभ भावनासे अमङ्गल हो सकता है। आपलोग रोगीका ऑपरेशन करते हैं; उसका अङ्ग काटते हैं; पर उसमें रोगीकी हित-भावना होनेसे आपकी वह क्रिया मङ्गलमयी होती है।"

× × ×

७मार्चको अपने परिवारके व्यक्तियोंके समक्ष श्रीभाईजीने कहा—

'जबसे मैंने होश सँभाला है, किसीका बुरा नहीं किया है न चाहा है।××× सबमें भगवान्को देखनेका प्रयत्न किया है। इसमें कहीं सफल हुआ हूँ, कहीं असफल भी। ××× शत्रु तो मेरा कोई है ही नहीं। ××× शरीरमें कष्ट होनेसे मुझे उसकी अनुभूति होती है, पर मैं भीतरसे बहुत प्रसन्न हूँ।'

× × ×

१० मार्चको रात्रिमें साढ़े ग्यारह बजे श्रीभाईजीका जी घबरानेलगा। पासमें बैठी बच्ची राधाने कहा—'नानाजी! आपका जी घबरा रहा है?' श्रीभाईजीने कहा—'हाँ, जी घबराता है, पर मेरा क्या लेता है।' बच्चीने उत्तर दिया—'नानाजी! आपका जी घबराना देखकर हमलोगोंका तो जी घबराता है।' श्रीभाईजी पुनः बोले—'न जीनेका अर्थ है न मरनेका अर्थ है; सब व्यर्थ है। जो जीको अपना मानता है, उसका जी घबराता है। मैं जीको अपना नहीं मानता तो मेरा जी क्यों घबरायेगा?'

× × ×

श्रीभाईजीकी अनुभूति थी कि भगवान्के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुकी कोई सत्ता नहीं है। उनकी यह अनुभूति 'कल्याण'के जन्मसे पूर्वसे ही थी। अपनी इस मान्यताको उन्होंने विक्रम-संवत् १९८०से पूर्व एक पदमें अभिव्यक्त किया था, जो इस प्रकार है—

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥
नाथ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें, जग सारेमें॥
रोग-शोक धनहानि दुःख अपमान घोर अति, दारुण क्लेश।
सबमें तुम, सबही तुममें, अथवा सब तुम्हरे ही वेश॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब तब मैं फिर किसलिये डरूँ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःखवेष धारणकर, नाथ!
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकडूँगा जोरोंके साथ॥

इसके पश्चात् 'कल्याण'के माध्यमसे तथा प्रवचनोंद्वारा अपनी इस अनुभूतिको उन्होंने सहस्रों बार दोहराया। जीवनके अन्तिम वर्षोंमें तो उनकी स्थिति विचित्र हो गयी थी। उस समयकी उनकी अनुभूतिके विषयमें मुझ-जैसा तुच्छ प्राणी क्या लिखे। रोग बढ़ता जा रहा था एवं पोषण-तत्त्व किसी भी रूपमें शरीरमें नहीं पहुँच पा रहा था। इससे उन्हें बोलनेमें कष्ट हो रहा था। ८ मार्चको अचानक उनके मनमें आया—अपनी इस अनुभूतिको लिखितरूपमें जगत्को दे जाऊँ। उन्होंने सर्वथा अशक्तिकी अवस्थामें भी काँपते हुए हाथोंसे कलम पकड़ी और लेटे-लेटे दो पद लिखे, जो उनकी उस समयकी मनःस्थितिके सजीव चित्र हैं। जगत्के लिये उनके ये अन्तिम लिखित उपदेश हैं; पर दुःखकी बात है कि उन्होंने ये दोनों पद बँगला लिपिमें लिखे। शारीरिक भीषण अशक्ति एवं हाथ काँपनेके कारण उनके इन पदोंकी लिखावट अस्पष्ट है। बहुत प्रयत्न करनेपर भी अभीतक वे दोनों पद पूरे पढ़नेमें नहीं आये। उनका जितना अंश स्पष्ट हो पाया है, वह नीचे दिया जा रहा है—

अबकी बार व्याधि······पीड़ा सज प्रिय तुम आये।
बीच-बीचमें स्वाँग बदलते रहते तुम मनमाये॥
देख तुम्हारी इस आकृतिको घरवाले थर्राये।
································॥
································।
································॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छोड़ शरीर तुम्हें पा नित मैं सानँद मौन समाऊँ ।
.... मैं सुख-संग सिधाऊँ ॥
घर कैसे बच्चों, मित्रों, घरवालोंको समझाऊँ ।
कैसे आश्वासन दूँ, कैसे उन्हें रहस्य बताऊँ ॥

× × ×

मेरी करुण प्रार्थना सुनकर इन्हें तुम्हीं समझा दो ।
.... सबको कुछ अपना मर्म जता दो ॥
हो जायें ये निहाल जानकर गूढ़ रहस्य तुम्हारा ।
मिट जाये तुरंत इनका भ्रम-शोक, मोह-दुख सारा ॥
पा जायें ये तुमसे, प्यारे ! ज्ञान-प्रेम सुख-आलय ।
सदा-सर्वदाको मिट जाये मायामय दुःखालय ॥
तुमसे होता नहीं अमङ्गल कभी किसीका प्यारे ।
करते नित मङ्गल .... ॥
भोक्ता-भोग्य-भोग सब कुछ ही यहाँ बने हो तुम ही ।
खेल-खिलौना बने .... खेलते तुम ही ॥
कभी .... सब बन स्वयं नाचते-गाते ।
कभी व्याधि .... दुख शोक मोह सज पड़े सिसकते ॥
लीलामय ! तुम नित मनमानी लीला करते रहते ।
.... ॥
क्यों वैसी रचना करते हो, मजा तुम्हें क्या आता ।
होता कोई .... तो इसे समझ कुछ पाता ॥

× × ×

१३ मार्चको रात्रिमें डा० चक्रवर्तीसे बोले—'आप जो कर रहे हैं, वह भगवान्‌की सेवा कर रहे हैं और भगवान्‌की सेवा करनेवालेको भगवान् ही मिलते हैं ।' इसके पश्चात् परिवारवालों, स्वजनों एवं मित्रोंके प्यारकी बात कही तथा अपने जीवनके सम्बन्धमें उन्हीं बातोंको दोहराया, जो ७ मार्चको उन्होंने कही थीं । उस दिन उनके कहनेमें सबको ऐसा लगा, जैसे वे सबसे विदाई ले रहे हों । उनकी बातें सुननेपर सभीके नेत्र बरस पड़े । वातावरण अत्यन्त गम्भीर हो गया । पर उपाय क्या था ?

१४ मार्चकी सायंकालसे शरीरकी स्थिति गम्भीर होने लगी । रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) बहुत कम हो गया, नाड़ी रुक-रुककर चलने लगी, हृदयकी ध्वनिमें परिवर्तन आ गया, श्वासकी गतिमें विकार आ गया । डाक्टर-वैद्योंकी रायमें श्रीभाईजीके लिये प्रभातका दर्शन कठिन था; पर इस गम्भीर स्थितिमें भी श्रीभाईजी निश्चिन्त थे, शान्त-सुस्थिर थे । रात्रिमें साढ़े बारह बजे जब डाक्टर चक्रवर्ती उनकी नाड़ी अनुभव करनेकी असफल चेष्टा कर रहे थे, श्रीभाईजीने बहुत ही मन्द स्वरमें धीरेसे कहा—'विचार-शक्ति बिल्कुल ठीक है; स्मरण-शक्ति कभी ठीक रहती है, कभी नहीं । मुँहसे बोला नहीं जाता ।' इतना कहकर उन्होंने अपने काँपते हुए दाहिने हाथको धीरेसे ऊपर किया और डाक्टर साहबसे इशारेमें पूछा—'आपने भोजन किया कि नहीं ?' जहाँ घड़ी-पल गिने जा रहे थे, वहाँ श्रीभाईजीको डाक्टर साहबके भोजनकी चिन्ता बनी थी ! यह है उनकी वास्तविक स्थितिकी एक झलक ।

× × ×

भगवान्‌के विधानसे शरीरको अभी एक सप्ताह और रहना था । दूसरे दिन प्रातःकाल स्थितिमें सुधार हो गया । नाड़ी पुनः अपने स्थानपर आ गयी, श्वासकी गति स्वाभाविक हो गयी; पर यह स्थिति २४ घंटे बाद पुनः परिवर्तित होने लगी । २-३ दिन बाद तो कई भीषण उपद्रव बढ़ गये; पर शरीरकी उस सर्वथा लाचारीकी अवस्थामें तथा भीषण कष्टमें भी श्रीभाईजीके मुखपर, आँखोंमें वही प्रसन्नता, वही गम्भीरता, वही स्थिरता, वही निश्चिन्तता, वही प्यार झलक रहा था । उनकी विचार-शक्ति पूर्णरूपसे ठीक थी तथा वे अपने मनको अपने इष्टमें स्थिर किये हुए थे । जब पीड़ा अधिक होती, तब उनके मुखसे 'राम-राम' या 'नारायण-नारायण' नामका उच्चारण होता था । श्रीभाईजीकी श्रीभगवान्‌के नामपर सबसे अधिक निष्ठा थी । एक बार उन्होंने ऋषिकेशके सत्सङ्गमें कहा था—'मैं भगवान्‌के नामके जपपर जोर क्यों देता हूँ ? इसका कारण यही है कि मैंने जीवन भर यही किया है । जो कुछ भी अच्छी बात जीवनमें आयी है, वह नाम-जप एवं भगवत्कृपाके प्रतापसे । पारमार्थिक जीवनका प्रारम्भ नाम-जपसे हुआ और जीवनमें साधना भी इसीकी हुई । मैं नाम-महिमाको अर्थवाद नहीं मानता । मैंने नाम-जपसे बहुत-बहुत बड़े कार्य सफल होते देखे हैं और स्वयं मेरे जीवनमें हुए हैं । नामकी जो महिमा कही जाती है, वह सत्य है और अनुभवकी वस्तु है । अतः इसे बलपूर्वक कहनेमें कोई संकोच नहीं ।'

श्रीभगवन्नामकी इस निष्ठाका वे अन्तिम श्वासतक निर्वाह करते रहे । २० मार्चकी रात्रिकी बात है—श्रीभाईजीके नीचेके होंठ हिल रहे थे, मानो उनमें कम्पन हो रहा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हो। डा० चक्रवर्ती महोदयके मनमें आया कि मुँहमें दाँत न होनेसे होंठ काँप रहा है। यदि इस प्रकार बराबर होंठमें कम्पन होता रहा तो दुर्बलता बढ़ती जायगी। वे श्रीभाईजीके समीप बैठकर बोले—'भाईजी! आपका होंठ काँप रहा है; दाँत लगा दिये जायँ, जिससे काँपना बंद हो जाय। कम्पन दुर्बलता बढ़ायेगा।' डा० साहबकी प्यार-भरी सलाहसे श्रीभाईजीका हृदय भर आया और उन्होंने अपनी वास्तविक बात उन्हें बतला दी। बोले—'जप करछि'—'जप कर रहा हूँ।' यह वह स्थिति थी कि जब शरीरका प्रत्येक कोष (Cell) पानीकी एक-एक बूँदके लिये तरस रहा था; मुँहमें 'थ्रश'(Thrush—एक रोग-विशेष, जिसमें जीभ, मसूड़ों एवं गलेमें घाव हो जाते हैं, उनपर सफेद पपड़ी आ जाती है) के कारण ड्रॉपरसे बूँद-बूँद करके पानी जीभपर डाला जा रहा था और उसके ६ दिन पहलेसे नसद्वारा ग्लूकोस आदि नहीं जा पा रहा था—अर्थात् ट्रांस्फ्यूज़न (Transfusion) भी बंद था।

× × ×

विधिका विधान! २१ तारीखके दोपहरमें कलाईके समीपसे नाड़ी लुप्त हो गयी, रक्तचाप बहुत कम हो गया, श्वास-कष्ट बढ़ गया तथा पेटमें भीषण दर्दका दौरा आ गया। इंजेक्शन दिये गये, पर दर्द कम नहीं हुआ। धीरे-धीरे नाड़ीने कोहनी-का स्थान भी छोड़ दिया, पर श्रीभाईजीकी विचारशक्ति वैसी ही बनी हुई थी। सभी डाक्टर-वैद्य आश्चर्य-चकित थे। रात्रिमें लगभग ११ बजे (अर्थात् शरीर छूटनेके ९ घंटे पूर्व) जब डाक्टर चक्रवर्ती एवं डाक्टर शर्मा महोदय श्रीभाईजीको देख रहे थे, तब श्रीभाईजीने साहस करके अपना दाहिना हाथ काँपते-काँपते थोड़ा-सा उठाया और इशारा करके पूछा—'आपलोगोंने भोजन किया है कि नहीं?' श्रीभाईजीकी इस प्यारभरी सँभालने डाक्टरोंके हृदयको मथ दिया और उनके नेत्रोंसे आँसू बरस पड़े। आज भी जब डाक्टर महानुभाव इस प्रसङ्गको स्मरण करते हैं, तब वे अधीर हो जाते हैं।

× × ×

जैसे-तैसे २२ तारीखका प्रातःकाल हुआ। सब घरवालोंने अनुभव किया, अब शरीरके अवसानका समय आ पहुँचा है। उन्होंने श्रीभाईजीसे बड़े ही दैन्य एवं करुणभावसे प्रार्थना की। श्रीभाईजी शान्तचित्तसे सबकी प्रार्थना सुनते रहे और अन्तमें उन्होंने अपने काँपते हुए दोनों हाथ उठाये और उन्हें मिला लिया—सबसे विदाई ले ली! इससे ठीक दस मिनट पश्चात् एक हिचकी आयी, मुँहसे रक्तका एक कुल्ला निकला और श्रीभाईजी चिरनिद्रामें सो गये—भगवान्‌की नित्यलीलामें लीन हो गये। उनका दाहिना हाथ आशीर्वादकी मुद्रामें ऊपर उठा हुआ था तथा नेत्रोंमें वही प्यार, वही वात्सल्य, वही करुणा भरी थी। ऐसा लगता था—जाते-जाते वे सबपर अपने आशीर्वाद एवं प्यारकी वर्षा कर रहे हैं!

× × ×

यह है श्रीभाईजीका अन्तिम उपदेश अपने शरीरद्वारा एवं वाणीद्वारा। हम उनके इस उपदेशको मनोयोगपूर्वक पढ़ें, समझें एवं उसके अनुसार अपने जीवन बनायें। हरिः ॐ तत्सत्!!

[संग्रहकर्ता—कृष्णचन्द्र अग्रवाल]

सर्वत्र भगवदनुभूति

दुःख-सुख सारे, हर्ष-विषाद। मान अपमान, शोक-आह्लाद॥
अमरता-मरण, ज्ञान-अज्ञान। नरक अति घोर, परम कल्याण॥
सभीमें भरे तुम्हीं, भगवान! सभी करते तव लीला-गान॥
दृश्य, द्रष्टा, दर्शनके भेद। सभी तुममें, तुम सदा अभेद॥
इसीसे नित्य शान्त आनन्द। हृदयमें बसे नित्य स्वच्छन्द॥
दीखता मधुर तुम्हारा रूप। सदा सर्वत्र पवित्र अनूप॥
मिट गया सारा ममता-मोह। छा रहे चिदानन्द-संदोह॥
हुआ संकल्प-तमोंका नाश। छा गया चारों ओर प्रकाश॥

—श्रीभाईजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दृष्टिकोण

[गर्भपात-क़ानून या हत्याको मान्यता ?]

(लेखक—श्रीसिद्धराजजी ढड्ढा)

२७ मई १९७१ को राज्यसभाने गर्भपातके सम्बन्धमें एक 'बिल' स्वीकृत किया है। यह बिल जल्दी ही अब लोकसभाकी स्वीकृतिके लिये पेश होनेवाला है। जिस रूपमें यह कानून राज्यसभामें स्वीकृत हुआ है, उसका असर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवनपर बहुत दूरगामी होगा, अतः इस प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है।

गर्भवती स्त्रीका जीवन बचानेके सिवा किसी भी दूसरे कारणसे गर्भपात करना या कराना यह उस स्त्री तथा गर्भपात करनेवाले दोनोंके लिये भारतके मौजूदा कानूनमें (इंडियन पिनल कोड, धारा ३१२) में जुर्म माना गया है। इसी प्रकारके या इससे भी सख्त कानून दुनियाके दूसरे देशोंमें भी थे, अथवा हैं।

एकका जीवन बचानेके लिये दूसरेका जीवन लेना कुछ संयोगमें अपराध नहीं माना जाता है, पर इसके अलावा किसी भी मानव-प्राणीकी हत्या सामाजिक और नैतिक, दोनों दृष्टिसे अपराध है। गर्भपात या भ्रूणहत्या भी उसी श्रेणीमें है। इसके अतिरिक्त, गर्भपातके परिणाम केवल सम्बन्धित व्यक्तितक सीमित नहीं रहते हैं, उसके सामाजिक परिणाम भी बहुत व्यापक और विशेष महत्त्वके हैं। इसे ध्यानमें रखकर ही भारतीय समाजशास्त्रियोंने भ्रूणहत्याकी गिनती महापातकोंमें की है।

आजकी दुनियामें प्रगतिशीलताके नामपर स्वच्छन्द व्यवहारकी ओर झुकाव बढ़ रहा है और कई देशोंमें भ्रूणहत्यासे सम्बन्धित कानूनोंको ढीला किया जा रहा है। भारत सरकार जो कानून अब बना रही है, उसकी मुख्य बातें नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—इस कानूनमें बताये गये संयोगों और कारणोंसे गर्भपात किया जाय तो वह अपराध नहीं माना जायगा।

२—गर्भाधान हुए १२ हफ्तेसे अधिक समय नहीं हुआ हो तो कोई भी रजिस्टर्ड चिकित्सक (मेडिकल प्रेक्टीशनर) और १२ हफ्तेसे अधिक, लेकिन २० हफ्तेसे अधिक समय न हुआ हो तो कोई भी दो रजिस्टर्ड चिकित्सक, प्रामाणिकतासे (इन गुड फेथ) इस रायके हों कि गर्भाधान चालू रहने देनेमें गर्भवती स्त्रीके जीवनको खतरा है अथवा उसके शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्यको हानि होनेका खतरा है, अथवा जन्म लेनेपर संतानको ऐसी शारीरिक या मानसिक विकृति होनेका खतरा है, जिससे वह विकलाङ्ग (हैंडिकैप्ड) रह जीयेगा तो गर्भाधानका अन्त किया जा सकता है।

स्पष्टीकरण

क—कोई गर्भवती स्त्री यह कहे कि गर्भाधान बलात्कारसे हुआ है तो ऐसे गर्भाधानसे उत्पन्न परितापसे स्त्रीके मानसिक स्वास्थ्यको गम्भीर हानि होना सम्भव है—ऐसा मान लेना चाहिये।

ख—संतानकी संख्या मर्यादित करनेके लिये कोई विवाहित स्त्री या उसका पति कृत्रिम उपाय काममें ले और वह निष्फल होनेसे गर्भाधान हो जाय, तो इस प्रकार अनिच्छासे हुए गर्भाधानसे परिताप पैदा होगा, जिससे स्त्रीके मानसिक स्वास्थ्यको गम्भीर हानि सम्भव है, ऐसा मान लेना चाहिये।

३—गर्भाधान चालू रहने देनेमें स्वास्थ्यको हानि होनेका खतरा है या नहीं। यह तय करनेमें गर्भवती स्त्रीके आस-पासके (मौजूदा तथा निकट भविष्यमें होनेवाले) वातावरणको ध्यानमें लाया जा सकेगा।

४—सरकारी अस्पताल या सरकारद्वारा स्वीकृत स्थानके सिवा अन्य किसी स्थानपर गर्भाधानका अन्त नहीं लाया जा सकेगा।

५—ऊपर बताये गये अनुसार गर्भपातके लिये समय-मर्यादा, स्थान-मर्यादा और दो डाक्टरोंकी सम्मति आदिकी मर्यादा बाँधनेमें आयी है। लेकिन कोई रजिस्टर्ड चिकित्सक प्रामाणिकतासे ऐसा मत रखे कि गर्भवती स्त्रीकी जिंदगी बचाने अथवा उसके शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्यकी गम्भीर एवं स्थायी हानि होनेसे रोकनेके लिये तत्काल गर्भाधानका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्त करना जरूरी है, तो वह उपर्युक्त मर्यादाओंका पालन न करते हुए भी वैसा कर सकेगा।

६—इस कानूनके अनुसार कोई रजिस्टर्ड चिकित्सक प्रामाणिकताके साथ या वैसे इरादेसे गर्भाधानका अन्त करे और उससे कुछ हानि या हानि होनेकी सम्भावना हो तो उसके खिलाफ अदालतमें कोई कार्यवाही नहीं की जा सकेगी।

उपर्युक्त बातोंसे यह स्पष्ट हो जायगा कि कानूनकी दृष्टिसे अब गर्भपातकी कार्यवाहीको इतना आसान और ढीला बनाया जा रहा है कि उसके लिये कोई खास रुकावट नहीं रह जायगी। इतनी ढिलाई बहुत कम देशोंमें हुई है। स्त्री गर्भपातकी इच्छा जाहिर करे और डाक्टर उसमें सहमत हो तो दोनोंके लिये मार्ग खुला है। डाक्टरके लिये तो यह कमाईका साधन है, इसलिये सहमत होना उसके तो हितमें ही है। कानूनमें लगभग सारी जिम्मेदारी और अधिकार डाक्टरके हाथमें दिये गये हैं। कानूनमें प्रामाणिकता (गुड फेथ) पर जगह-जगह जोर दिया गया है, लेकिन डाक्टरने प्रामाणिकतासे काम नहीं किया, यह यों भी साबित करना लगभग असम्भव है, पर प्रस्तावित कानूनमें इतने छिद्र हैं और इतनी बचतें रक्खी गयी हैं कि इस बारेमें डाक्टरको कोई खतरा नहीं है।

मौजूदा कानूनमें स्त्रीकी प्राणरक्षाको ही गर्भपातके लिये जायज कारण माना गया है, लेकिन नये कानूनमें प्राणरक्षाके अलावा स्त्रीके 'शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्यको हानि होनेका खतरा' भी गर्भपातके लिये एक कारण माना गया है। यहाँतक भी गनीमत थी, लेकिन गर्भाधान चालू रहनेसे स्त्रीको शारीरिक अथवा मानसिक हानिका खतरा था या नहीं। इस बारेमें आगे जाकर कोई सवाल खड़ा न हो और कानूनकी पकड़ करीब-करीब न रहे, इस दृष्टिसे इसी कानूनमें यह पहलेसे ही तय कर दिया गया है कि किन परिस्थितियोंमें यह मान ही लिया जाना चाहिये कि गर्भवती स्त्रीके मानसिक स्वास्थ्यको गम्भीर हानि होगी। (देखिये ऊपर स्पष्टीकरण 'क' और 'ख') इस प्रकार कानूनमें डाली हुई मर्यादाओंका बहुत अर्थ नहीं रह जाता।

स्पष्टीकरण 'ख' कितना व्यापक है, वह थोड़ेसे विचारसे समझमें आ जायगा। गर्भाधान रोकनेका कृत्रिम उपाय किया गया है या नहीं और करनेपर भी वह असफल हुआ, यह तो सम्बन्धित स्त्री या पुरुष ही कह सकता है, डाक्टर कैसे जाने? डाक्टरको तो जो वह कहेंगे, वह मानना होगा और कृत्रिम उपाय करनेके बावजूद गर्भाधान होता है तो उससे स्त्रीको इतना ज्यादा मानसिक परिताप होगा कि गर्भपात जरूरी है—यह विधान तो आश्चर्यजनक है। इसमें ऐसी कोई मर्यादा भी नहीं है कि दो-तीन संतान हो चुकी हों और फिर ऐसे उपाय निष्फल जायँ तो गर्भपात करना। प्रथम गर्भाधानमें भी गर्भपात किया जा सकता है। इसके लिये स्त्रीकी जिंदगीको खतरा अथवा शारीरिक हानिकी सम्भावना हो यह भी जरूरी नहीं है। केवल इतना काफी है कि संतान नहीं चाहिये, उसके लिये कृत्रिम उपाय किये, लेकिन वह निष्फल गये, इसलिये गर्भपात करना है। इससे अधिक स्वच्छन्द व्यवहारकी कल्पना करना मुश्किल है।

ऊपर दी गयी कानूनकी व्याख्याके पैरा नं० ३ में गर्भवती स्त्रीके 'आस-पासके (सामाजिक, आर्थिक) वातावरण'का जिक्र है और यह भी केवल मौजूदा वातावरणका नहीं, बल्कि नजदीकी भविष्यमें हो सकनेवाले वातावरणका यह एक ऐसा विधान है कि जिससे गर्भपात चाहनेवाली स्त्रीको अथवा करानेवालेको पूरी छूट मिलती है।

इस नये कानूनके लिये कारण यह दिया जाता है कि मौजूदा कानून सख्त होनेसे बहुत बड़ी संख्यामें गर्भपातका काम छिपे-चोरी "नीम हकीम" लोगोंके जरिये होता है, जिसकी वजहसे स्त्रीको शारीरिक हानि और जानकी जोखिम रहती है। नये कानूनके लिये लोगोंका समर्थन प्राप्त करनेकी दृष्टिसे भारत सरकारकी ओरसे जो प्रचार किया जा रहा है, जिससे लोगोंकी दयाभावनाको उभारा जा सके और दूसरी ओर छिपे-चोरी, गंदे-संदे वातावरणमें, मन-चाहा पैसा ऐंठनेकी दृष्टिसे गर्भपात करानेवाली अधकचरी दाइयों या डाक्टरोंकी राक्षसी प्रतिमा खड़ी की जाती है, जिससे लोगोंको यह लगे कि सरकार शोषक और हृदयहीन लोगोंसे बचावके लिये ही यह कानून बना रही है।

स्वास्थ्य और परिवार-नियोजन-विभागके केन्द्रीय राज्यमन्त्री श्री डी० पी० चट्टोपाध्यायने अंग्रेजी पाक्षिक "दी स्टेट्स" के दिनांक २१ जून, १९७१ के अङ्कमें कहा है कि राज्यसभाने जो बिल पास किया, वह "पिनलकोडकी कुछ शर्तोंको ढीला करनेके अलावा और कुछ नहीं करता।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर कानूनकी जो धाराएँ उनपर दी गयी हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि श्रीचट्टोपाध्यायका यह कथन सरासर झूठ है। उनपरसे यह साफ जाहिर है कि प्रस्तावित कानूनका उद्देश्य सिर्फ मौजूदा कानूनकी सख्तीको ढीला करने या स्त्रियोंकी प्राणरक्षा अथवा उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षाका नहीं है, बल्कि उसका असली मकसद जन-संख्या-वृद्धिको रोकनेके लिये गर्भपातका सहारा लेना है। संतति न होनेके लिये कृत्रिम उपाय किया जाय, यह समझमें आ सकता है; लेकिन उसके लिये भ्रूणहत्या करना भी जायज है, यह खतरनाक विधान है और गम्भीरतापूर्वक सोचनेकी बात है। आज परिवार-नियोजनके लिये कृत्रिम उपायोंका व्यापक प्रचार हो रहा है। उसके साथ-साथ अब भ्रूणहत्याका भी प्रचार होगा और उसकी योजनाका भी!

स्त्रीको शारीरिक और मानसिक हानिसे बचानेके लिये, उसके जानकी जोखिम कम करनेके लिये गर्भपात जरूरी है—ऐसी बात कही जाती है; लेकिन स्वयं गर्भपातसे भी कितनी शारीरिक और मानसिक हानि होती है, इसके बारेमें कुछ नहीं कहा जाता। निष्पक्ष डाक्टरोंका कहना है कि—

"अगर गर्भके कारण मानसिक दुष्परिणाम हो सकता है तो वह गर्भपातसे भी हो सकता है। ऐसी स्त्रियाँ बहुत कम होती हैं, भले ही वे अनचाहे हुए गर्भाधानसे कितना भी मुक्त होना चाहती हों, जिनको गर्भपातके बाद पश्चात्ताप नहीं होता। यह प्रतिक्रिया मातृत्वकी स्वाभाविक भावना अथवा वृत्तिके कारण होती है। अगर वास्तवमें स्त्रीको यह भरोसा हो कि गर्भपात उसकी जानको बचानेके लिये जरूरी था, तब तो शायद यह प्रतिक्रिया कुछ नरम पड़ जाती है; लेकिन अगर गर्भपात तुच्छ, तात्कालिक भावनावश किया गया हो तो स्त्री फिर जीवनभर अपने इस अपराधकी भावनासे दुःख पाती रहती है।

गर्भपातका यह विधान वास्तवमें लाखों निरीह एवं निस्सहाय बच्चोंकी—ऐसे प्राणियोंकी जो मुकाबला नहीं कर सकते—हत्याको मान्यता देनेके समान है। इसका सामाजिक और नैतिक पहलू और भी अधिक गम्भीरतासे विचार करने लायक है। अपने अहंकारमें मनुष्य यह मान लेता है कि उसके खुदके तात्कालिक सुख अथवा स्वेच्छाचारके लिये लाखों निस्सहाय प्राणियोंकी हत्या करना भी जायज है। हजारों वर्षोंकी साधना और प्रयत्नसे साधे गये जीवनके पवित्र मूल्य (सैंक्टिटी) के तुच्छ स्वार्थके लिये नष्ट करनेकी कोशिश की जा रही है। खासकर स्त्रियोंके ध्यानमें यह आना चाहिये कि यह उनको केवल भोगोंका साधन बनानेकी और उनके स्त्रीत्व और मातृत्वको नष्ट करनेकी योजना है।* ('सर्वोदय प्रेस सर्विस'के सौजन्यसे)

*** हमारे शास्त्रों एवं संत-महात्माओंने मनुष्य-जन्मको अत्यन्त दुर्लभ बताया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने रामचरितमानसमें कहा है—**

'कबहुँक करि करुना नर देही।
देत ईस बिनु हेतु सनेही'॥
(उत्तरकाण्ड)

'यह जीव जब कर्मवश चौरासी लाख योनियोंमें भटकता-भटकता थक जाता है, तब उसके अकारण स्नेही भगवान् उसपर कृपा करके उसे मनुष्य-शरीर देते हैं।' उसी प्रसङ्गमें गोस्वामीजीने उसे 'भव बारिधि कहुँ बेरो'—संसार-समुद्रको पार करनेके लिये जहाजके समान बताया है। अनादिकालसे जन्म-मृत्युके प्रवाहमें बहता हुआ जीव मनुष्य-जन्ममें ही उसके पार जा सकता है। कारण देव-पितर आदि ऊपरकी योनियाँ और पशु-पक्षी आदि अधम योनियाँ तो केवल भोग-योनियाँ हैं। ऊपरकी योनियोंमें भोगोंका बाहुल्य एवं नीचेकी योनियोंमें दुःखकी प्रबलता होनेसे उन-उन जीवोंकी बुद्धि कुण्ठित रहती है और वे अपने कल्याणकी बात सोच ही नहीं सकते। केवल मनुष्य ही ऐसा जीव है, जो संसारके भोगोंको दुःखयोनि समझकर उनकी ओरसे मनको हटाने एवं अपने वास्तविक स्वरूपको पहचाननेकी योग्यता रखता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हमारी अहिंसा-प्रधान संस्कृतिमें तो जीवमात्रको अवध्य बताया गया है। हमारे वेद पुकारकर कहते हैं—'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि—किसी भी जीवकी हिंसा न करो।' फिर भ्रूणहत्याको तो बाल-हत्याके समान अक्षम्य बताया गया है। पुनर्जन्मके सिद्धान्तके अनुसार न जाने कैसी महान् आत्मा किसी जननीकी कूखमें आती है—कोई दिव्यदृष्टिसम्पन्न महापुरुष ही इस बातको जान सकते हैं। भागवतमें कथा आती है कि देव-शत्रु प्रबल-पराक्रमी दैत्यराज हिरण्यकशिपुके तपस्याके लिये अपनी राजधानीसे बाहर चले जानेपर अवसर पाकर देवराज इन्द्र उनकी पत्नी कयाधूको चुराकर ले जा रहे थे—इस अभिसंधिसे कि 'इसके गर्भमें देवद्रोही हिरण्यकशिपुका अत्यन्त प्रभावशाली वीर्य है, उसके गर्भसे बाहर आनेपर उसे मैं मार दूँगा।' देवर्षि नारद त्रिकालदर्शी ही नहीं, सबके मनकी जाननेवाले हैं। उन्हें इन्द्रकी दुरभिसंधि एवं कुकृत्यका पता चल गया। वे तत्क्षण इन्द्रके पास जा पहुँचे और उन्होंने इन्द्रको समझाया कि 'इस दैत्यपत्नीके गर्भमें भगवान्‌का परम भक्त, अत्यन्त बली एवं निष्पाप महात्मा है। तुममें उसे मारनेकी शक्ति नहीं है। अतः इसे तुम छोड़ दो।' देवर्षि नारद जगत्पूज्य हैं। उनकी बातको इन्द्र टाल नहीं सके। देवर्षि नारद कयाधूको अपने यहाँ ले गये और उसे हिरण्यकशिपुके तपस्यासे लौटनेतक अपने आश्रममें रक्खा। इस बीचमें उन्होंने उसे भागवतधर्मका रहस्य समझाया और विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दिया। समय बीत जानेपर कयाधू तो उस उपदेशको भूल गयी, किंतु उसके गर्भमें स्थित भागवतरत्न प्रह्लादने अपनी प्रबुद्ध चेतनाके बलसे उस उपदेशको ग्रहण किया और उसके फलस्वरूप उन्हें वह दुर्लभ भक्ति प्राप्त हुई, जिसके प्रभावसे आततायी हिरण्यकशिपु उनका कुछ भी न बिगाड़ सका। उसकी दारुण यातनाएँ उनका बाल भी बाँका न कर सकीं और अन्ततोगत्वा उन्होंने सर्वव्यापी भगवान्‌को खंभेमेंसे प्रकट करके जगत्‌को दिखा दिया कि भगवान् अणु-अणुमें व्याप्त हैं। वे भक्तके प्रीतिवश पत्थर-जैसी जड वस्तुमें भी प्रकट हो सकते हैं। हमारी मूर्तिपूजाका यही रहस्य है।

सारांश यह कि गर्भस्थ जीवका जीवन भूमिष्ठ जीवकी अपेक्षा कम मूल्यवान् नहीं है; कारण उसके अंदर वही आत्मा है, जो बालक, युवा एवं वृद्धके अंदर स्थित रहती है। अंग्रेजीमें एक लोकोक्ति है—"Child is the father of man"—जिसका भाव यह है कि बालक ही आगे चलकर प्रौढ़ बनता है। इसी प्रकार हम यह कह सकते हैं कि गर्भस्थ मानव ही आगे चलकर प्रौढ़ मानवके रूपमें परिवर्तित होता है। इसीलिये हमारे शास्त्रोंमें भ्रूणहत्याको बहुत बड़ा पाप माना गया है। इन सब बातोंको देखते हुए हमारी सरकार गर्भपात-कानूनमें जो परिवर्तन करने जा रही है, वह कितना अनर्थकारी और हमारी आर्य-संस्कृतिके ही नहीं मानवताके प्रतिकूल होगा, इसे कोई भी समझ सकता है। अतः सभी विचारशील नर-नारियोंका कर्तव्य है कि वे इस नये कानूनका तीव्र विरोध करें—जगह-जगह सभा करके प्रस्ताव पारित करें तथा राष्ट्रपति एवं प्रधान मन्त्रीके नाम अधिकाधिक संख्यामें तार दें कि वे गर्भपातको कानूनकी मान्यता दिलानेका जो घातक प्रयास कर रहे हैं, वह सर्वथा निन्दनीय है। अतः इसके सम्बन्धमें जो विधेयक राज्यसभाके द्वारा स्वीकृत हो चुका है, उसे लोकसभामें कदापि न रखा जाय, कानूनका रूप तो उसे कदापि दिया ही न जाय। जनताको चाहिये कि वह लोकसभामें चुने हुए अपने प्रतिनिधियोंको भी बाध्य करे कि वे इस विधेयकको कभी पारित न होने दें।

—सम्पादक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पवित्रताका ध्यान

परम श्रद्धेय ब्रह्मलीन श्रीसेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी खान-पानकी पवित्रता एवं निष्ठा प्रसिद्ध है । वे खान-पानमें वस्तुकी पवित्रता एवं जिनके माध्यमसे वह वस्तु प्राप्त होती है, उन व्यक्तियों एवं पात्रोंकी शुद्धिपर बड़ा ध्यान रखते थे। अपनी इस निष्ठाके निर्वाहके लिये वे चाहे जहाँका जल एवं भोजन स्वीकार नहीं करते थे, फिर चाहे वह भगवत्प्रसाद ही क्यों न हो। कई बार ऐसे प्रसङ्ग उपस्थित हो जाते थे, जहाँ प्रसादकी मर्यादा तथा आपसी व्यवहारका निर्वाह करना पड़ता था, वहाँ वे अपनी व्यवहार-कुशलतासे प्रसादकी मर्यादाका निर्वाह करते हुए—बिना किसीका चित्त दुखाये अपनी आचार-निष्ठाको अक्षुण्ण रखते थे। उनके जीवनमें ऐसे अगणित प्रसङ्ग हैं। पूज्य श्रीस्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजने कृपापूर्वक ऐसे दो प्रसङ्ग हमें लिखकर भेजे हैं, उन्हें हम नीचे दे रहे हैं—

(क)

सन् १९३८ के लगभग गीताप्रेसकी ओरसे एक तीर्थ-यात्रा स्पेशल ट्रेन निकली थी। उस यात्रामें लगभग तीन महीनेतक सेठजीके सम्पर्कमें रहना हुआ और उनके व्यवहार-पाटव एवं खान-पानकी पवित्रताकी निष्ठाके कई उदाहरण देखनेको मिले। हमलोग भावनगरका राजमहल देखनेके लिये गये। वहाँ राजा तो थे नहीं, परंतु स्वागत-सत्कारका प्रबन्ध था। कार्यकर्ताओंने सेठजीसे आग्रह किया कुछ खाने-पीनेके लिये। सेठजी उत्तर देते थे—'मैं अभी भोजन करके आया हूँ, भूख नहीं है।' अन्ततः वे लोग जल पीनेके अनुरोधपर अड़ गये। सेठजीका उत्तर वही था—'भूख नहीं है।' हमलोग वहाँसे लौटे तो अवसर मिलनेपर मैंने सेठजीसे पूछा—'वे लोग कहते थे जल पीनेको और आप मना करते थे खानेको। इसका क्या अर्थ है ?' सेठजीने बतलाया—'प्यास लगी थी, वहाँका पानी पीना नहीं था तो मैं यह कैसे कह देता कि प्यास नहीं है।' वे सामान्यतः कहीं ऐसा-वैसा जल नहीं पिया करते थे। वे अपने वाक्कौशलसे बिना वहाँके लोगोंका चित्त दुखाये बच आये।

(ख)

एक घटना और है—ब्रजभूमिके एक प्रतिष्ठित मन्दिरमें मैं उनके साथ ही गया था। सेवा-अधिकारीने मन्दिरसे बाहर निकलकर बड़े प्रेमसे भगवान्का चरणामृत दिया। मैंने बड़े प्रेमसे उसे पी लिया। परंतु मैंने सावधानीसे देखा—सेठजीने अपना हाथ मुँहके ऊपरसे ले जाकर चरणामृत सिरपर डाल लिया। बादमें मेरे पूछनेपर उन्होंने कहा—'पता नहीं कैसे जलसे, क्या-क्या डालकर, कबसे चरणामृत रखा होगा। इसको बिना जाने-समझे कैसे मुँहमें डाल लूँ ?' इस प्रकार चरणामृतको सिरपर डालकर श्रीसेठजीने अपनी खान-पान-सम्बन्धी नियम-निष्ठाका एवं चरणामृतकी मर्यादाका निर्वाह किया।

(२)

एक आदर्श राष्ट्रपति

[स्विजरलैंडकी गणना परम सभ्य तथा समृद्ध देशोंमें है। इसका क्षेत्रफल १६ हजार वर्गमील है और वह २२ राज्योंमें विभक्त है। घड़ियोंके निर्यात तथा सैर-सपाटोंके लिये तो यह परम प्रसिद्ध है। इसमें तीन बड़ी नदियोंका प्रवाह है और इसका ३॥ हजार वर्गमीलका क्षेत्र प्रायः पर्वतीय है। इसमें जर्मन, फ्रेंच तथा इटालियन—तीन भाषाएँ बोली जाती हैं। यह प्रतिवर्ष ५ अरबके सिल्क (रेशमी कपड़े), घड़ियों तथा क़सीदेकी सामग्रीका निर्यात करता है। यहाँ झीलें बहुत हैं। न्यू चैटेल झीलका क्षेत्र तो १०० वर्गमीलके लगभग है।*

अभी कुछ मास पूर्व भिक्षु श्रीचमनलालजी वहाँ गये थे। उनकी वहाँ राष्ट्रपतिके ही कार्यालयमें एक अधिकारीसे राष्ट्रपतिके विषयमें कुछ बातें हुई थीं। इसका विवरण 'Shooting Star' पत्रिकाके मई १९७१के अङ्कमें प्रकाशित हुआ था, जिसे कलकत्तेके साप्ताहिक पत्र 'Truth' ने भी अपने १६जुलाई १९७१के अङ्कमें ज्यों-का-त्यों प्रकाशित किया है। यहाँ उनके प्रश्नोत्तरका अविकल अनुवाद दिया जा रहा है।]

* The Swiss Confederation consists of 22 cantons (states) with a republican and federal constitution, each canton consisting of several small districts. It consists of three great river valleys (Rhones, Rhine and Aar). The lakes are very numerous. Switzerland exports several things, *viz*, watches, machines, silk cloths etc. It exported embroideries, silk cloths and watches of about 40 crore francs each in year 1920, and the present export is of about 50 crore francs each (Encyclopedia Britannica - Volume XXI, pp. 665-88, Edition 1947).

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैं कुछ ही दिन हुए स्विजरलैंडसे लौटा हूँ, जहाँ मैं अपनी पुस्तक 'Switzerland shows the way' (स्विजरलैंड—मार्गदर्शकके रूपमें) नया संस्करण तैयार करनेके लिये गया था। वहाँ बर्न (Burn) में मैं राष्ट्रपतिके कार्यालयमें एक ऐसे अधिकारीसे मिला, जो उनके साथ दस वर्षतक काम कर चुका था। उसके साथ मेरी जो बात-चीत हुई, उसे मैं शब्दशः प्रस्तुत कर रहा हूँ।

प्रश्न—आपके राष्ट्रपतिका प्रासाद कहाँ है ?

उत्तर—हमारे राष्ट्रपतिके लिये कोई प्रासाद नहीं है, उद्यान-युक्त कोई आवास भी नहीं। वे किराया देकर एक वासकक्ष (Flat) में रहते हैं।

प्रश्न—उनके सेवकोंकी संख्या कितनी है ?

उत्तर—स्विजरलैंडमें कितने सेवकोंका प्रश्न ही नहीं है, एकका होना ही एक वरदान है; किंतु राष्ट्रपतिके घर तो दिनमें बँधे समयके लिये एक दासी भर उनकी पत्नीकी सहायताके लिये आती है। उनकी पत्नी स्वयं एक प्राध्यापिका हैं।

प्रश्न—तब राष्ट्रपति अपने अतिथियोंको कहाँ ठहराते हैं ?

उत्तर—वे अपने अतिथियोंको होटलमें ठहराते हैं और वहीं उनका स्वागत-सत्कार होता है।

प्रश्न—आपके राष्ट्रपति विदेशयात्राके लिये कितनी बार जाते हैं ?

उत्तर—नहीं, जबतक वे राष्ट्रपतिका पद ग्रहण किये रहते हैं, उन्हें कहीं बाहर जानेकी अनुमति नहीं है। यही नियम है।

प्रश्न—कितने राष्ट्रपतियों अथवा देशके कर्णधारोंको आप प्रतिवर्ष निमन्त्रित करते हैं ?

उत्तर—अधिक-से-अधिक दो। इस वर्ष केवल एक ही आये थे—वे थे आपके राष्ट्रपति।

प्रश्न—देशके विभिन्न भागोंमें वे कितने उद्घाटनके कार्यक्रमों तथा स्वागत-समारोहोंमें सम्मिलित होते हैं ?

उत्तर—सात सदस्योंके मन्त्रिमण्डल (Council) में निमन्त्रणोंपर विचार होता है तथा उन्हींमेंसे एकको उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये नियुक्त कर दिया जाता है। राष्ट्रपति इने-गिने समारोहोंमें ही सम्मिलित होते हैं; क्योंकि उनके लिये यहाँ अपने कामको सँभालना अनिवार्य है। गृह-मन्त्री भी वे ही होते हैं।

प्रश्न—क्या वे अधिकतर राष्ट्रीय अथवा अंताराष्ट्रीय प्रश्नोंपर ही भाषण देते हैं ?

उत्तर—केवल राष्ट्रीय विषयोंपर ही; परंतु वे वैज्ञानिक प्रश्नोंकी ही चर्चा कर सकते हैं और उस समय उनकी विदेशी समस्याओंसे तुलना कर सकते हैं।

प्रश्न—राष्ट्रपति कितने घंटे काम करते हैं ?

उत्तर—कार्यालयका निर्धारित समय तो नित्य नौ घंटेका है—प्रातःकाल ७.३० से दिनमें १२.३० तक तथा पुनः २.३० से ६.३० तक। प्रायः वे जल्दी ही आ जाते हैं, सात बजेसे भी पहले। कभी-कभी वे रातको ७.३० या ८ तक भी काम करते रहते हैं और घर भी काम साथ ले जाते हैं।

प्रश्न—घर बस्ता कौन पहुँचाता है ?

उत्तर—राष्ट्रपति स्वयं ले जाते हैं। हमारे यहाँ चपरासियों-की व्यवस्था नहीं है।

प्रश्न—शासनने राष्ट्रपतिको कितनी मोटर-गाड़ियाँ दे रखी हैं ?

उत्तर—एक भी नहीं। कार्यालय आने-जानेके लिये वे बस या ट्रामका उपयोग करें—यही उनसे आशा की जाती है। बहुधा वे कार्यालय पैदल ही जाते हैं और दिनको भोजनके लिये बससे घर आते हैं।

प्रश्न—यदि बसमें भीड़ रहती है तो वे क्या करते हैं ?

उत्तर—किसी भी अन्य यात्रीकी भाँति वे भी खड़े रहते हैं। किसी महिलाके लिये बैठनेका स्थान न रहनेपर वे अपना आसन उसके लिये छोड़ देते हैं।

प्रश्न—राष्ट्रपति रेडियोपर कितने भाषण देते हैं ?

उत्तर—एक वर्षमें दो—एक पहली अगस्तको, जो हमारा राष्ट्र-दिवस है और दूसरा पहली जनवरीको, जब संवत्सरका आरम्भ होता है।

प्रश्न—क्या आपलोग अपने राष्ट्रपतियोंके चलचित्र बनाते हैं एवं उनके भाषणोंको पुस्तकाकार प्रकाशित करते हैं ?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं।

प्रश्न—क्या इंग्लिस्तान तथा भारतवर्षकी भाँति आपके यहाँ भी राष्ट्रपतियोंके साथ तड़क-भड़कवाले अङ्गरक्षक रहते हैं ?

उत्तर—नहीं, राष्ट्रपतिको अपनी रक्षाके लिये एक व्यक्तिकी भी आवश्यकता नहीं है—सादी पोशाकमें भी कोई साथ नहीं रहता। उनकी लोकप्रियता ही उनका सबसे बड़ा कवच है। उनके कार्यालयके बाहर भी आपको कोई पुलिसका सिपाही दृष्टिगोचर नहीं होगा। कार्यालय एक छोटी-सी गलीमें स्थित है और कोई भी टहलता हुआ उसमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चला जा सकता है तथा लिफ्टके द्वारा राष्ट्रपतिके निजी सचिवके कार्यालयमें पहुँच सकता है। आपको रोकनेके लिये बंदूकधारी संतरी नहीं खड़े रहते। ऐसे हैं स्विजरलैंडके राष्ट्रपति।

इस विवरणपर किसी टिप्पणीकी कोई आवश्यकता नहीं। आधुनिक जगत्के अधिकांश देशोंको इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

(३)

निर्धन शाक-विक्रेताकी ईमानदारी

इस समय सौ और दस रुपयेके नोट इस प्रकारके चल पड़े हैं कि उनके आकार-प्रकारसे उनका अन्तर समझना सरल नहीं रह गया है। इस कारण अशिक्षित स्त्री-पुरुषोंकी तो बात ही क्या, पढ़े-लिखे व्यक्ति भी अनेक बार धोखा खानेकी स्थितिमें आ जाते हैं। ऐसी ही एक घटना मेरी पत्नीके साथ हुई।

बात गाजियाबादकी सन् १९६८ ई०के अक्तूबर मासकी है। मेरी धर्मपत्नी सब्जी खरीदने गयी। उसने एक रुपयेकी सब्जी ली और दस रुपयेके भ्रममें सौ रुपयेका नोट सब्जीवालेको दे दिया। सब्जीवालेसे नौ रुपये वापिस लेकर मेरी पत्नी घर लौट आयी।

तीसरे या चौथे दिन मेरी पत्नीने रुपयेका हिसाब किया तो वह घबरा गयी। उसे स्मरण आया कि सब्जीके मूल्यके रूपमें दस रुपयेके स्थानपर सौ रुपयेका नोट उसने दे दिया था। वह सोचने लगी—'अब रुपये तो क्या मिलेंगे, पर एक बार चलकर पूछ तो लूँ।'

शाक-विक्रेताका नाम था श्रीगङ्गाशरण। दूरसे ही मेरी पत्नीको देखकर श्रीगङ्गाशरणने कहा—'आइये बहिनजी, उस दिन रात्रिमें मैं पैसे गिनने लगा तो एक नोट कुछ बड़ा देखा। मनमें शङ्का हुई। ध्यानसे देखा तो वह सौ रुपयेका था। मैंने सोचा, यह नोट तो बहिनजीका ही होना चाहिये। मैंने आपके बाकी नब्बे रुपये एक पोटलीमें बाँधकर रख लिये और प्रतिदिन आपकी राह देखता हूँ। यह पोटली है। आप अपने रुपये गिन लीजिये।'

पत्नीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। उसने पोटली खोलकर देखी तो उसमें पूरे नब्बे रुपये थे।

मेरी पत्नी श्रीगङ्गाशरणको दस रुपये देने लगी तो उसने कहा—'ना बहिनजी! अपने सत्य और ईमानकी कमाई मुझे मिल गयी है। इन रुपयोंको स्वीकारकर मैं अपना धर्म नहीं गँवाऊँगा।'

निश्चय ही वे पुरुष धन्य हैं, जो इस युगमें भी अपना ईमान नहीं खोते।

—श्रीलीलाधर मलहोत्रा

(४)

अधिकारीकी ईमानदारी

यह बात सन् १९६८ ई०की है। संध्याका समय था। पण्डित श्रीसत्यस्वरूपजी कार्यालयसे इंडिया गेट होकर लौट रहे थे। उन्होंने देखा, मार्गमें एक बैग पड़ा हुआ है। बैगमें कुल २२००) नकद और कुछ आवश्यक कागज-पत्र थे। पण्डितजीने विचार किया, इसे चलकर थानेमें जमा कर दूँ, जिनका होगा, वे जाकर ले लेंगे। कुछ दूर चलनेपर उन्होंने फिर सोचा, 'जिनका बैग होगा, वे इसे ढूँढ़ते इस मार्गसे आ भी सकते हैं और पण्डितजी पुनः वहीं लौट आये, जहाँ उन्हें वह बैग मिला था और खड़े-खड़े प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ ही देर बाद उन्होंने देखा, साइकिलपर सवार एक सज्जन अत्यन्त चिन्तित और उदास उधर ही आ रहे थे। आते ही उन्होंने बड़ी विनयसे कहा—'जी, यह बैग मेरा है। इसमें मेरे कुल २२००) और अमुक-अमुक कागज-पत्र हैं। ये रुपये मैं बैंकमें जमा कराना चाहता था, पर देर होनेसे साइकिलपर बैग लटकाकर घर जा रहा था। पता नहीं, यह कैसे गिर पड़ा। घर पहुँचा, तब याद आयी। भागा आ रहा हूँ, मैं गरीब आदमी हूँ। थानेमें इसे जमा करा देनेपर मेरी दौड़-धूप और परेशानी बढ़ेगी। आप मुझे लौटा देंगे तो मेरी चिन्ता मिट जायगी।'

उक्त सज्जनकी बातोंसे पण्डितजीको पूरा संतोष हो गया और उन्होंने बैग उन्हें दे दिया। बैग रुपये और कागज-पत्रोंसहित सुरक्षित मिल जानेपर उक्त सज्जनको कितनी प्रसन्नता हुई, वे ही जानते होंगे। हाँ, अपना कर्त्तव्य-पालन कर सकनेके कारण पण्डितजीके भी आनन्दकी सीमा नहीं रही। उक्त सज्जनने पण्डितजीको अनेक धन्यवाद दिये और वे सुखपूर्वक घर लौट गये। अपने घर वापिस आते समय पण्डितजीकी आत्मामें कितनी शान्ति थी, कोई भी ईमानदार महानुभाव सहज ही अनुमान कर सकते हैं।

—श्रीलीलाधरजी मलहोत्रा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(५)

अविस्मरणीय

फरिश्ते से बेहतर है इंसान बनना।
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज़ियादा॥
—'हाली'

इसी सन् ७१के मई मासकी बात है। कॉलेजकी परीक्षा सम्पन्न हो जानेपर मैं अपने घर (धानापुर, वाराणसी) जानेके लिये गोरखपुरसे त्रिवेणी एक्सप्रेससे वाराणसी जा रहा था। मैं स्टेशन उस समय पहुँचा, जब गाड़ी छूटनेका समय हो चला था। मेरे साथ मेरे ही पड़ोस-के एक सज्जन और मेरा बिस्तर तथा पुस्तकें आदि थीं। जिला कारागारके एक सिपाहीके १००) भी उसके घर देनेके लिये मेरे पास थे, जिन्हें मैंने सुरक्षाकी दृष्टिसे अपने पड़ोसी बन्धुको दे दिया था। उक्त कान्स्टेबिल मेरी साइकिलके साथ मुझे स्टेशन पहुँचाने गये थे। पिताजीने कह दिया था कि बुक न होनेपर आप साइकिल लेते आइयेगा। किंतु जिस डिब्बेमें मैं बैठा, उसमें मेरे ही गाँवके एक और कान्स्टेबिल थे। बिना बुक की हुई साइकिल ले जानेकी मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं थी, किंतु मेरे गाँवके कान्स्टेबिलने उस साइकिलको यह कहकर चढ़वा लिया कि आगे चलकर इसका चार्ज दे दिया जायगा। गाड़ी चल पड़ी थी। मैं शीघ्रतामें साइकिल उतरवा भी नहीं सका। गाड़ी भटनी जं० पहुँची। हमलोग टी०टी०को ढूँढ़ रहे थे, पर वे कहीं नहीं मिले। गाड़ी सीटी देकर चली ही थी कि दो-तीन कान्स्टेबिल मेरे डिब्बेमें घुस आये। उन्होंने कहा—साइकिल उतारिये। मेरे साथी तथा और कई लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि आप साइकिलका जो भी चार्ज हो, ले लें। पर उन्होंने किसीकी एक न सुनी। अपना सारा सामान गाड़ीमें ही छोड़कर मैं साइकिलसहित प्लेटफार्मपर उतर आया।

मैं अत्यन्त उदास और चिन्तित था। जी घबरा रहा था। मेरा सारा सामान और रुपये मेरे पड़ोसी बन्धुके पास थे। जल्दीमें वे कुछ निश्चय न कर सके और न मुझे कुछ रुपये ही दे सके। मेरे पाकिटमें कुल १६) पड़े थे। मेरे पास आकर टी० टी०ने कहा कि 'आप या तो साढ़े बाईस रुपये जुर्माना दीजिये या मजिस्ट्रेटके पास चलिये।'

मैं और घबरा गया। मेरी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। मेरे पास पूरे रुपये नहीं थे। मैं उन्हें कैसे देता और मजिस्ट्रेटके पास जानेपर पता नहीं, वे कितना जुर्माना करते। फिर मुझे भटनीसे वाराणसी जाना था। मेरा सारा सामान गाड़ीमें ही छूट गया था। अपनी उस समयकी दुःखद मानसिक स्थिति मैं ही जानता हूँ। मैं मन-ही-मन भगवान्को स्मरण कर उनसे प्रार्थना करने लगा।

जब मैं कुछ नहीं कर सका, तब पुलिसवाले मुझे मजिस्ट्रेटके पास ले चले और मैं व्याकुल होकर श्रीभगवान्-को पुकारने लगा। मैंने श्रीभगवान्की करुण प्रार्थना एवं पुकारका प्रत्यक्ष चमत्कार देखा। पुलिसके साथ कुछ ही दूर चलनेपर अचानक एक सज्जनने मेरे पास आकर बड़े ही प्यारसे पूछा—'क्या बात है ?' मैंने उन्हें सारी स्थिति बता दी। उन्होंने सिपाहियोंसे कहा—'चलिये, टी० टी०को चार्ज दे दिया जायगा।' उन्होंने टी० टी०के पास जाकर मुझे जितने रुपयेकी जरूरत थी, देकर रसीद कटवा दी और फिर मुझसे बोले—'आप चिन्ता मत करिये। सबके ऊपर मुसीबत आती है।' और मुझे घरतक पहुँचनेके लिये भी उन्होंने रुपये दे दिये। मुझ सर्वथा अपरिचित व्यक्तिको कुल मिलाकर उन्होंने १६) दिये।

रुपये वापस करनेके लिये मैंने उनका पता पूछा तो उन्होंने बता दिया। मैंने नोट कर लिया—"अरशदअली इराकी, आइडियल ग्लास एजेन्ट, पो० बिल्थरारोड (बलिया)"।

इसके अनन्तर पैसेंजर ट्रेनसे वाराणसी जानेके लिये मैं साइकिल बुक कराने गया। एक सज्जनने, जो देखनेमें भले आदमी प्रतीत होते थे, मुझसे कहा—'मुझे ३) दीजिये, मैं प्लेटफार्म आदि लाकर आपकी साइकिल बुक करा देता हूँ।' मैंने उन्हें तीन रुपये दे दिये। पर वे सज्जन गये तो गये ही रह गये। लौटे ही नहीं। जैसे-तैसे मैं वाराणसी पहुँचा। घर पहुँचते ही मैंने पिताजीको पत्र लिख दिया कि 'आवश्यकतावश मैंने भटनी जं०पर इराकी साहबसे २०) रुपये लिये थे। आप कृपया उन्हें शीघ्र भेज दें।'

मेरा पत्र पाकर पिताजीने इराकी साहबको इस आशयका पत्र लिखा कि "प्रिय श्रीरामने आपको २०) भेजनेके लिये लिखा है। मैं आपसे परिचित नहीं हूँ। आप यदि मेरे गाँवके हैं, तो मैं दो-चार दिनोंमें ही सपरिवार घर जानेवाला हूँ। वहाँ आपके घर रुपये दे दूँगा या आप यहाँ आनेवाले हों तो मुझसे अवश्य मिल लें, रुपये आपको तुरंत मिल जायँगे। यदि यह सम्भव न हो और मैं जिस पतेपर आपको पत्र लिख रहा हूँ, वह ठीक है तो आप लौटती डाकसे एक कार्ड लिख दें। मैं तुरंत आपकी सेवामें रुपये भेज दूँ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चार-पाँच दिनोंमें ही इराकी साहबका इस आशयका पत्र पिताजीको मिला—

आदरणीय दुबेजी,

सप्रेम वन्दे ! आपका पत्र पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । आप-जैसे लोग भी अभी हैं, यह बड़ी खुशीकी बात है ।* भटनी स्टेशनपर पुलिस भाई श्रीरामको साइकिलसहित मजिस्ट्रेटके पास ले जा रही थी । समयपर मैं पहुँच गया । मैंने उन्हें केवल १६) दिये थे । आप दुआ करें कि मैं जिंदगीभर इसी तरह दूसरोंकी भलाई और नेकीकी राहपर चलता रहूँ ।

आपका—अरशदअली इराकी

उन्होंने अपने पत्रमें एक शब्द भी नहीं लिखा कि आप मुझे रुपये भेज दीजिये । पिताजीने उनका कार्ड पाते ही तुरंत उनके प्रति अत्यन्त आभार प्रकट करते हुए १६) मनीआर्डरसे भेज दिये ।

मैं प्रायः सोचा करता हूँ श्रीभगवान्‌की प्रार्थनामें कितनी शक्ति है । यदि दयामय प्रभुकी दयासे इराकी साहब उस समय नहीं मिलते तो मेरी क्या दशा होती । करुणामय प्रभुकी प्रार्थनाकी अमित शक्तिके साथ एक ओर इराकी साहबके परोपकारके भाव और दूसरी ओर मेरा ३) लेकर सरक जानेवाले सज्जनका व्यवहार मेरे जीवनकी अविस्मरणीय घटना है । मैं बार-बार श्रीभगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि मेरा भी जीवन इराकी साहबकी तरह परोपकार एवं नेकीके काममें लगता रहे ।

—श्रीराम दुबे

(६)

जीवनको लाज न लगे ?

मैं गुजरातके भालप्रदेशमें प्रवासीके रूपमें रह रहा था । गाँव डेढ़ मीलकी दूरीपर था और मध्याह्न हो गया था । विश्राम करनेके विचारसे एक कूएँके समीप नीमकी छायामें हमलोग जा बैठे ।

हमलोग वहाँ पहुँचें, इसके पूर्व ही हमारी नजर एक किसान भाईके ऊपर पड़ी । उसका एक पैर कटा हुआ था, पासमें ही लकड़ीकी बनी हुई बैसाखी पड़ी थी और वह खुरपीसे निकम्मा घास छील रहा था ।

'बहन !' खेतमें दूरपर काम करती हुई अपनी बहनको उसने पुकारा । बहनको आयी देख वह बोला—'इन भाइयोंको पानी तो पिला दे ।'

बहनने झटसे कूएँमेंसे खींचकर पानी निकाला और हमलोगोंको पिलाया ।

'आपलोग यहाँ खेती करते हैं ?' मेरेसे रहा न गया और मैं पूछ बैठा ।

'जी हाँ !' बैठे-बैठे ही किसानने उत्तर दिया—'नजदीकके गाँवमें हमलोग रहते हैं । आठ बीघेके इस टुकड़ेमें हम भाई-बहन खेती करते हुए जैसे-तैसे दिन काट रहे हैं ।'

'—और आपका एक पैर तो निकम्मा-सा लगता है, ऐसी हालतमें खेती किस तरह सम्भव है ?'

'जी हाँ, आजसे बारह वर्ष पूर्व एक काँटा चुभा था, वह पक गया और अन्तमें अस्पतालमें पैर कटवा देना पड़ा । इसी हालतमें बैठे-बैठे जो काम मुझसे हो पाता है, मैं करता हूँ, बाकी सब काम-काज बहन सँभाल लेती है ।'

'क्या बहनकी शादी नहीं की ?'

"शादी तो की थी, किंतु दमेके रोगमें उसका पति मर गया ! उसके ससुरालमें अच्छी स्थिति है और उसे वहीं रहनेको ससुरालवाले कहलाते भी हैं । किंतु जबसे मैं लँगड़ा हुआ, मेरी पत्नी मुझे छोड़कर भाग गयी ! उसी समयसे बहन यहीं रह रही है । मैंने इसे बहुत समझाया कि 'तेरी ससुरालमें सभी प्रकारकी सुविधा होते हुए भी यहाँ रहकर इतना कष्ट क्यों उठा रही है ?' किंतु उसने कह दिया—'मेरे भाईको इतना कष्ट है और अब मैं वहाँ जाकर क्या करूँगी ? भाईकी विपदामें बहन भाग न बटाये तो जीवनको लाज न लगे ?'"

—शब्दोंको सुनते ही, भाईके लिये खेती करनेवाली बहनकी मैंने वन्दना की और फिर प्रश्न किया—'किंतु इस मध्याह्नके समयमें तो आराम करना चाहिये न ?'

'आज हमारे गाँवमें 'रविदादा' आनेवाले हैं, अतः उनका उपदेश सुनना है । दोपहरके बाद आज काम नहीं करना है । झटपट काम निपटाकर घर लौट जानेकी शीघ्रता होनेसे—काम बाकी न रह जाय, इसीलिये काममें लग रहे हैं ।'

बात सुनते ही मेरा हृदय भर आया । फिर मैंने मेरी भी पहचान दे दी और दोनों बहन-भाईने मुझे प्रणाम किया । मैं भी शर्मा गया और पीछेसे उन दोनोंके आग्रहसे मैंने उन्हींके घरपर अपना आसन जमाया । आज भी जब कभी भाईके लिये खेतका काम करती हुई उस बहनकी याद आ जाती है, मेरा मस्तक झुक जाता है ।

—रविशंकर महाराज

* शायद इराकी साहबका यह तात्पर्य था कि आजकल अपरिचित व्यक्तिसे पैसे लेकर वापिस करनेकी बात कौन सोचता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(७)

सच्चा पितृ-श्राद्ध

कविवर रवीन्द्रनाथ टाकुरके दादा द्वारकानाथ ठाकुर कलकत्ताके एक प्रसिद्ध व्यापारी और जमींदार थे। देहान्तके समय वे अपने उत्तराधिकारियोंके लिये लाखों रुपयोंका ऋण छोड़ गये थे। इन सब बातोंके होते हुए भी वे एक व्यावहारिक ज्ञानवान्, असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने अपने मरनेके कुछ दिन पहले ही अपनी सारी पैतृक सम्पत्तिका ट्रस्ट बनवा दिया था ताकि लेनदारोंका उसपर लेशमात्र भी हक न हो सके। उनकी मृत्युके बाद उनकी फर्मके मैनेजरने एक दिन लेनदारोंकी एक मीटिंग बुलवायी और उनके सामने फर्मका सब हिसाब पेश करते हुए कहा, 'फर्मकी आर्थिक स्थिति दिन-पर-दिन खराब होती जा रही है। फर्मके ऊपर इस समय एक करोड़ रुपये-का ऋण है और आमदनी केवल सत्तर लाख रुपयेकी। ऐसी परिस्थितिमें फर्मको तीस लाख रुपयेकी हानि हुई है। आपलोग चाहें तो फर्मकी जो कुछ भी सम्पत्ति है, उसे बेचकर अपनी रकम वसूल कर सकते हैं, परंतु साथ-साथ यह भी अच्छी तरहसे समझ लें कि फर्मके उत्तराधिकारियोंकी जायदाद एक ट्रस्टीकी जायदाद है, जिसपर कानूनी दृष्टिसे आपलोगोंका लेशमात्र भी हक नहीं। अतः वारिसोंकी जायदाद-मेंसे आपलोगोंको एक फूटा छदाम भी उपलब्ध न होगा।'

इस समय फर्मके मुख्य मालिक देवेन्द्रनाथ भी सभामें उपस्थित थे। मैनेजरके उपर्युक्त खुलासेसे उन्हें असह्य व्यथा हुई। उनके रोयें-रोयेंमें हिंदुत्वकी भावना कूट-कूटकर भरी थी। अंग्रेजी भाषाके विद्वान् होते हुए भी उनका जीवन हिंदू-धर्मके संस्कारोंसे ओतप्रोत था। वे यह भलीभाँति जानते थे कि भारतकी प्राचीन मनुस्मृतिके नियम-कायदेके अन्तर्गत पुत्रको पिताकी सम्पत्ति उत्तराधिकारमें मिले या न मिले, फिर भी पुत्रका धर्म और कर्तव्य है कि वह पिता-द्वारा छोड़ा हुआ सम्पूर्ण ऋण अदा कर दे। देवेन्द्रनाथ फौरन उठ खड़े हुए और लेनदारोंको आश्वासन दिलाते हुए कहने लगे कि मैनेजरके कथनानुसार वारिसोंकी जायदादमेंसे आपलोगोंको एक पाई भी नहीं मिल सकती, परंतु मैं एक हिंदू पिताका हिंदू पुत्र हूँ। हिंदू पुत्रका परम कर्तव्य है कि वह अपने पिताका पाई-पाई ऋण चुका दे। मैं और मेरे भाई विरासतमें मिली जायदादको बेचकर भी ऋण अदा कर देंगे।

तीस वर्षके नवयुवकके मुँहसे इन निःस्वार्थ शब्दोंको सुनकर लेनदार स्तब्ध रह गये। उनके नेत्र आँसुओंसे भींग गये। उन्होंने आपसमें कानाफूँसी करते हुए गद्गद होकर कहा कि महावैभवमें पले इन लड़कोंने इस निर्णयको लेकर जान-बूझकर मुसीबत मोल ले ली है। धन्य है उनकी नेक-नीयती, ईमानदारी और महान् त्यागको। यदि वे चाहते तो कानूनकी आड़ लेकर लेनदारोंकी सारी रकम बड़े मजेमें आसानीसे डकार जाते—उनका बाल भी बाँका न होता एवं उनकी नेकनीयती एवं ईमानदारीमें किसीको लेशमात्र भी संदेह न होता; क्योंकि भारतसरकारमें भी इस फर्मकी काफी मान्यता एवं साख-धाक थी। वे बड़ी आसानीसे आजके जमानेके सफेदपोश चालाक चतुर व्यक्तिकी तरह गाँवका रुपया मारकर समाजके आदर्श एवं प्रत्युत्पन्न-मति, सूझ-बूझसम्पन्न अगुआ बन बैठते; क्योंकि आज-के युगमें येन-केन-प्रकारेण धन हड़पनेवालोंको ही सभ्य एवं चतुर समझा जाता है।

लेनदारोंके स्वार्थी हृदयोंमें लड़कोंके प्रति सहानुभूति पैदा हो गयी। उन्होंने एकमतसे निर्णय किया कि वे फर्मकी जायदादको नीलाम न करवायेंगे, बल्कि कुछ समयतक-अपने कब्जेमें रखकर फिर वापस लड़कोंको लौटा देंगे। ऐसा ही हुआ। कुछ ही समय बाद लेनदारोंने फर्मका सारा कार्यभार देवेन्द्रनाथ और उनके बन्धुओंको सौंप दिया, तदुपरान्त उनके कुटुम्बके निर्वाहके लिये ढाई हजार रुपयेकी रकम देना शुरू कर दिया।

लायक पिताके लायक लड़कोंने इस डूबती फर्मकी इतनी अच्छी व्यवस्था की कि अल्प समयमें ही फर्म, जो हानिमें चल रही थी, बहुत लाभ देने लगी। इस लाभमेंसे लड़कोंने अपने पिताद्वारा छोड़ा हुआ पाई-पाई ऋण अदा कर दिया। लड़कोंके पिताने अपनी ख्यातिमें (जीते-जी) एक धार्मिक संस्थाको अस्पताल बनवानेके लिये एक लाख रुपयेका दान देनेका वायदा किया था, जिसे वे फर्मकी आर्थिक स्थिति बिगड़नेके कारण पूरा न कर सके थे। लड़कोंने पिताके इस प्रणको भी पूरा किया। इस तरहसे श्रम और बुद्धिमत्तासे काम लेकर अपनी कमाईमेंसे श्रद्धा-पूर्वक पितृऋण अदा करके देवेन्द्रनाथ और उनके बान्धवोंने सच्चा पितृ-श्राद्ध किया। ('कादम्बिनी')

—श्रीबल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

A Review of Beef in Ancient India

Size 18" × 22" (Demy) Octavo—232 Pages, Bound Rs. 2/-, Postage Rs. 1/40, Total Rs. 3/40.

Whenever the demand is made or an agitation takes place for the imposition of a ban on cow-slaughter, certain highly placed persons, out of ignorance or misunderstanding, publish articles in newspapers and magazines in which an effort is made to prove and establish that cow-slaughter was prevalent in Vedic India and beef was also taken. Simple persons get confused on reading these articles. From time to time, scholars have clarified the position by correct interpretation of such quotations in Hindi.

The work of collection and qualification has been done by Sri Jaidayal Dalmia with the co-operation of some scholars. This is an English version of the Hindi original. We hope that this book will be useful in removing from the minds of the general public such doubts as have crept into their minds thanks to the misleading articles tendentiously written by certain persons.

—The Manager, Gita Press, Gorakhpur.

प्राचीन भारतमें गोमांस—एक समीक्षा

आकार १८×२२ (डिमाई) आठपेजी, पृष्ठ-संख्या २३८, सजिल्द मूल्य २.००, डाकखर्च १.४० पैसे।

जब-जब गोवधबंदीका आन्दोलन या उसकी चर्चा चलती है, तब-तब कुछ लोग अपनी भ्रान्त धारणाके अनुसार समाचार-पत्रोंमें इस विषयका लेख प्रकाशित कराते रहते हैं कि प्राचीन भारतमें गोहत्या होती थी और गोमांस खाया जाता था, जिससे जनता भ्रममें पड़ जाती है। इस भ्रमके निवारणार्थ इस पुस्तकमें कुछ शास्त्रीय समाधानोंका संकलन किया गया है। कुछ विशिष्ट शङ्काओंका समाधान श्रीजयदयालजी डालमियाने परिश्रमपूर्वक कुछ विद्वानोंके सहयोगसे किया है। इसके अनुशीलनसे पाठक अवश्य समझ जायँगे कि 'वैदिक कालमें गोहिंसा और गोमांस-भक्षण प्रचलित था'—यह मत सर्वथा मिथ्या है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

नये ग्राहक शीघ्रता करें

इस वर्षके विशेषाङ्क "अग्निपुराण-गर्गसंहिता-नरसिंहपुराण-अङ्क" की विद्वानों तथा विचारशील पुरुषोंने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसमें भक्तिभावका हृदयमें संचार करनेवाली इतनी उपयोगी सामग्री दी गयी है कि उसको पढ़ना आरम्भ करनेपर जल्दी छोड़नेका मन नहीं होता। जिन प्रेमी महानुभावोंको ग्राहक बनना हो, वे तुरंत १०.०० दस रुपये मनीआर्डरसे भेज दें या वी० पी० द्वारा अङ्क भेजनेका हमें आदेश दें। सजिल्द विशेषाङ्कका मूल्य ११.५० है।

इसी प्रकार इसका प्रचार चाहनेवाले जो सज्जन नये ग्राहक बनानेका प्रयत्न करते हैं या प्रचारार्थ संस्थाओंमें वितरण करना चाहते हैं, वे भी शीघ्रता करेंगे। समाप्त हो जानेपर 'नये ग्राहक' बनने और बनानेवाले सज्जनोंको निराश ही होना पड़ेगा। इस विशेषाङ्ककी अबतक १,६२,००० प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस, गोरखपुर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रजि० सं० एल्० १७५

श्रीकृष्णकी जन्म-आरती

आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।
नन्दकुमार कृष्ण रसमयकी ।।
षडैश्वर्यमय पुरुष परात्पर,
मायापति, महान, मायापर,
विश्वातीत, विश्व, विश्वम्भर,
चिदानन्द-वपु इच्छामयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।१।।

अविनाशी, अज, अखिलभुवनपति,
आदि-अन्त-विरहित, अविगत-गति,
सेवत सतत संत निर्मल-मति,
दीन-शरण्य विशद-आशयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।२।।

असुरोद्धारक, दुष्कृतिनाशक,
स्थापक धर्म, अधर्म-विनाशक,
सदाचार-सद्भाव-विकाशक,
गो-द्विज-रक्षक, महिमामयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।३।।

पार्थ-सारथी गीता-गायक,
ज्ञान-भक्ति-सत्कर्म-विधायक,
लोक-संग्रही, लोक-सुनायक,
स्रष्टा, पालक, स्वयं प्रलयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।४।।

मथुरा-कारागार धन्य कर,
प्रकटे चार भुजा आयुध धर,
देवकि-श्रीवसुदेव-सुखाकर,
सहज सुहृद अनुकम्पामयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।५।।

व्रज पधार, कर लीला मञ्जुल,
नन्द-यशोदा-सुखकर, सुविमल,
व्रज-संरक्षक, अमित-शौर्य-बल,
शुचि सुषमा श्रीनन्दालयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।६।।

परम मधुर रसराज, रसिकवर,
ललित त्रिभङ्ग-मधुर, मुरलीधर,
गोपी-गो-गोपाल-सुहृद्वर,
अमल असीम प्रेम आलयकी ।
आरति श्रीवसुदेव-तनयकी ।।७।।

—श्रीभाईजी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri